विषैला वामपंथ

डॉ. राजीव मिश्रा

विषैला वामपंथ

डॉ. राजीव मिश्रा

शांति पब्लिशर्स इंडिया

प्रथम संस्करण

नवम्बर, 2019

पुनः मुद्रण

दिसम्बर, 2019

प्रमाणिक शोधन
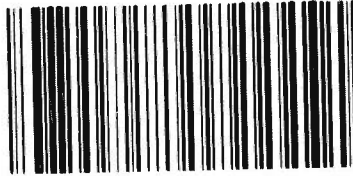
ISBN : 9788194334309

मुद्रक

मैनटेक प्रिंटोपैक

नारायणा, नई दिल्ली-110028

शांति पब्लिशर्स इंडिया

सी-114, नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-I, नई दिल्ली-110028

History is too important to be left to Historians
- Sir V.S. Naipaul

“इतिहास जैसी जरूरी चीज को
इतिहासकारों के भरोसे छोड़ा नहीं जा सकता”

भूमिका

वामपंथ पर एक किताब क्यों लिखूँ ? जो घट गया, बीत गया, खुद खर्च हो गया उस पर और समय और सोच क्यों खरचना ? वामपंथ पर एक पुस्तक में किस की रुचि हो सकती है? इसे पढ़ेगा कौन? वामपंथ आज है कहाँ?

वामपंथ रूस में था, पूर्वी यूरोप में था, कोरिया और क्यूबा में बचा है, चीन में रंग रूप बदल कर कैपिटलिज्म के साथ फल-फूल रहा है...पर अपने किस काम का?

भारत में यह बंगाल से उजड़ गया, त्रिपुरा से नष्ट हो गया, कल परसों केरल में भी दम तोड़ देगा, फिर इसकी बात भी क्या करनी है? भारत की जनता ने इसे नकार दिया है, दुत्कार दिया है। दारू पीकर किसी नाले में पड़ा, किसी बुद्धिजीवी की बुक शेल्फ और उसकी खिचड़ी दाढ़ी में पड़ा यह किसी का क्या बिगाड़ रहा है जो हम आज इसकी बातें भी कर रहे हैं?

ऐसे में वामपंथ प्रासंगिक भी क्यों है?

क्या वामपंथ सचमुच पराजित हो चुका है? या इसने सिर्फ रूप बदल लिया है और एक राजनीतिक आंदोलन के बजाय यह एक सामाजिक शक्ति बनकर आज भी सत्ता भोग रहा है?

किशोरावस्था में अक्सर लोग वामपंथी राजनीति और विचार प्रक्रिया को किसी ना किसी कोर किनारे से छूते ही हैं। हर युवा सवा या चौथाई वामपंथी होता ही है। फिर ज्यादातर, स्वस्थ मानसिकता वाले लोग इससे बाहर निकल लेते हैं, बड़े हो लेते हैं। पर फिर भी बहुत से लोग किसी ना किसी रूप में वामपंथी विचार प्रक्रिया को थोड़ा या ज्यादा सब्सक्राइब करते हैं। और इस जरा-सी सामाजिक वैचारिक स्वीकृति के बल पर वामपंथ समाज को संचालित करता रहता है और अपना विषैला एजेंडा चलाता रहता है।

अपनी युवावस्था में, कॉलेज के दिनों में मैं भी वामपंथी ही था। औसत से ज्यादा,

बल्कि घनघोर फिर धीरे-धीरे बौद्धिक विकास की प्रक्रिया में इससे बाहर निकल आया। पर अपनी उस वामी मनः स्थिति की पड़ताल मैंने बन्द नहीं की।

पिछले कुछ वर्षों में सोशल मीडिया पर लेखन की प्रक्रिया ने खुद मेरी अपनी सोच और अन्तः दृष्टि को भी विकसित किया और यह पड़ताल और गहन होती गयी, दृष्टि और स्पष्ट होती गयी। पर अगर इस पुस्तक का श्रेय मैं पूरी तरह स्वयं लेने का प्रयास करूँ तो यह एक बौद्धिक बेईमानी होगी।

मेरी दृष्टि को और स्पष्टता देने का श्रेय जाता है आदरणीय अग्रज श्री आनंद राजाध्यक्ष जी को। मुझे हमेशा उनके सतत बौद्धिक और वैचारिक मार्गदर्शन का सौभाग्य मिला और उनके साथ घंटों हुई बातचीत में इस पुस्तक का बीज पड़ा। अगर यह पुस्तक विचारों की एक फसल है तो इसकी बुआई और सिंचाई का श्रेय आनंदजी को ही जाता है। मैंने तो सिर्फ मेड़ों और बाड़ों के रखरखाव का काम किया है और आज यह फसल काटने बैठा हूँ।

अपनी विचार प्रक्रिया के क्रमिक विकास में भी मुझे कॉलेज के दिनों के अनेक मित्रों का साथ मिला। हॉस्टल के दिनों की लंबी शामें जो चाय की चुस्कियों और शतरंज की बाजियों के बीच गहरी रातों में बदल गई और उसमें छिड़ी लंबी राजनीतिक बहसों ने मुझे बदलने, सँभालने, सुलझाने का काम किया। अगर मैं मेडिकल कॉलेज के अनेक मित्रों को, जिन्होंने उन सालों में मुझे झेला, याद ना करूँ तो यह बहुत ही अन्याय होगा। मनीष खन्ना, धीरज सैनी, सुनील रैना, दिनेश त्रिपाठी, अजय भारद्वाज...तुम सबकी कितनी ही शामें इस किताब की भेंट चढ़ी हैं, गिन ना पाओगे.... जमशेदपुर में अभ्युदय और पूर्व सैनिक सेवा परिषद् के मेरे अनेक अनन्य मित्र मेरी इस विचार यात्रा के साक्षी रहे और उनकी वैचारिक सामाजिक प्रतिबद्धता सदैव मेरा प्रेरणा श्रोत रही। वे खुद जमीन पर जुटे रहे और मुझे हवाई लप्फाजी करने के लिए मुक्त रखा, फिर भी कभी मुझे जड़ों से कटने नहीं दिया।

लगभग यह पूरी किताब अलग-अलग समय पर फेसबुक पोस्ट्स के रूप में उतरकर आई है। मेरे जिन हजारों मित्रों ने इसे वहाँ पढ़ा, सराहा, फैलाया और मुझे इसे पुस्तक रूप में लिखने का प्रोत्साहन दिया...यह किताब मूलतः उनकी संपत्ति है।

और मेरी खैर नहीं अगर हर विवाहित व्यक्ति की तरह अपनी हर उपलब्धि का श्रेय अपनी पत्नी से ना शेयर करूँ। पल्लवी का श्रेय सिर्फ यह नहीं है कि उसके हिस्से का समय काट कर मैंने यह किताब लिखी और उसने लिखने दिया। वह मेरी विचार यात्रा की सिर्फ सहगामिनी ही नहीं है, एक अटूट संबल है। यह बताना काफी होगा कि 25 वर्ष पहले जब उससे मिला था तो तब तक मैं वामपंथी हुआ करता था। मुझमें राष्ट्रवाद का आरोपण और हमारा रोमांस एक साथ शुरू हुआ और यह एक संयोग मात्र नहीं है।

पर इसे पुस्तक रूप में लिखे जाने से बहुत-बहुत पहले इसका अधिकांश हिस्सा एक बहुत ही होनहार और कुशाग्र बुद्धि किशोर के साथ लंबी बातचीत के रूप में विकसित हुआ। वह है मेरा पुत्र सिद्धार्थ। पूरी किताब मूलतः सिद्धार्थ और उसकी पीढ़ी के प्रति मेरी चिंता और उनके संस्कारों पर हुए वैचारिक आक्रमण के प्रतिकार की छटपटाहट है। मेरा प्रयास होगा कि यह किताब इस पीढ़ी के हर युवा के हाथ में जाये, उनकी विचार प्रक्रिया का भाग बने और उन्हें वामपंथ के जहर से बचाने में सहायक सिद्ध हो। उस अगली पीढ़ी को मेरी यह तुच्छ भेंट समर्पित है।

- डॉ० राजीव मिश्रा

लेखक परिचय
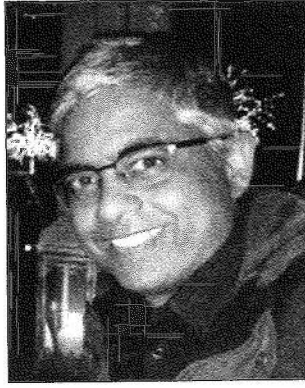
डॉ राजीव मिश्रा, यूँ तो पेशे से चिकित्सक हैं, पर शौकिया लेखन से किशोरावस्था से ही जुड़े हैं। इन्होंने भारतीय सेना की मेडिकल कोर में भी सेवाएँ दी हैं और मेजर के पद से सेवानिवृत हुए। साथ ही जमशेदपुर में अनेक समाज सेवी संस्थाओं से जुड़े रहे।

उन्होंने चिकित्सा के अलावा साहित्य, राजनीति और इतिहास के अध्ययन में अपनी रुचि बनाई रखी और सोशल मीडिया के आगमन ने उनकी सृजनात्मकता को नई दिशा दी। अपनी विचार यात्रा में उन्होंने वामपंथ से शुरुआत करके गाँधी वाद और फिर राष्ट्रवाद तक की दूरी तय की है, और सोशल मीडिया में राष्ट्रवादी लेखकों के बीच एक परिचित नाम हैं।

'विषैला वामपंथ' लेखक की पहली प्रकाशित कृति है। वर्तमान में लेखक शेफील्ड, यॉर्कशायर (यू.के.) में नेशनल हेल्थ सर्विसेज में चिकित्सक के रूप में कार्यरत हैं।

ई–मेल : mishrajeev@gmail.com

प्रास्ताविक

लंदन निवासी डॉ राजीव मिश्रा की लिखी हुई 'विषैला वामपंथ' की प्रस्तावना मैं कैसे लिख रहा हूँ यह भी एक मनोरंजक किस्सा है। क्योंकि डॉ राजीव से मेरा कोई सीधा परिचय नहीं है। इस प्रस्तावना के लिए हम दोनों के एक कॉमन फ्रेंड ने मुझे बिनती की और मुझे विषैला वामपंथ की पीडीएफ भेज दी।

समय की कमी के कारण मैंने हाँ तो कर दी थी लेकिन पुस्तक पढ़ नहीं पाया था। फिर हमारे मित्र से मुलाकात हुई तो उन्होंने विनम्रता पूर्वक अपनी बिनती दोहराई। इसलिए डाउनलोड कर के पढ़ना शुरू किया और फिर पूरी पढ़कर ही उठ पाया।

डॉ राजीव ने सही लिखा है कि 'विषैला वामपंथ' कहीं से भी विद्वत्ता से भरा नहीं है। लिहाजा, आम आदमी को वामपंथ और वामपंथी क्या होते हैं, यह बिलकुल आम आदमी की बोल चाल की भाषा में ही समझाया है उन्होंने। लेकिन फिर भी, लेखक की मेहनत दिख जाती है, जिस तरह की जानकारी जुटाकर उन्होंने इतने सरल तरीके से पेश किया है, आम आदमी शायद न समझे लेकिन पत्रकारिता में जिसके बाल सफेद हुए हैं, ऐसे मेरे जैसे अनुभवी पत्रकार के लिए तो यह सरल सी भाषा में लिखी गयी पुस्तक एक दस्तावेज से कम नहीं।

आमतौर पर हम वामपंथ के नाम से उनके पंचपरमेश्वर से आगे नाम भी कहाँ जानते हैं? मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्टेलिन और माओ; बस हो गया अपने लिए वामपंथ, भाई ! एक दिलचस्प बात यह है कि वामपंथियों को भी यह बहुत Suit करता है, क्योंकि वे भी नहीं चाहते कि उन्होने संस्कृति से क्या छेड़छाड़ की है, यह आम जनता को समझ आए। साहित्य, कविता, संगीत, नाट्य, फिल्म - हर जगह उन्होने पूरा स्पेस अपने लोगों से भर दिया और समाज की सोच ही बदल दी। लिहाजा, समाज यह समझे ही नहीं इसलिए इन्होने इस मूवमेंट के पुरोधाओं के नामों की कभी चर्चा भी नहीं की। इसके चलते Hegemony वाला अंटोनिओ ग्रामस्की हो, या Frankfurt School नाम से प्रसिद्ध गिरोह ने पूरे

इंग्लिश, यूरोपीय तथा अमेरिकन सांस्कृतिक जगत का जो नुकसान किया है, उनके बारे में आम जनता में शायद ही ये बोलते पाये जाएँगे। Frankfurt School का तो अस्तित्व ही वामपंथी नकारते पाये जाएँगे, और यही उनकी सबसे बड़ी सफलता है। उसी गिरोह के सदस्यों के बनाए फॉर्मूलों से भारतीय संस्कृति का भी लगभग अपरिवर्तनीय नुकसान किया है यहाँ के वामपंथियों ने, जो बिना गहरे शोधकार्य के सबको समझ नहीं आयेगा। डॉ राजीव ने 'विषैला वामपंथ' में यही षडयंत्र उजागर किए हैं और वह भी हमारे आपके बोलचाल की सरल सीधी भाषा में।

'विषैला वामपंथ' पढ़ते-पढ़ते आपकों कई बार धक्के लगेंगे कि इस हद तक भी ऐसे पढ़े लिखे संभ्रांत लोग जा सकते हैं। खासकर जिन्हें हम सम्मानीय समझते रहे, उनके सम्मान तो बस एक दूसरे की पीठ खुजाने भर से अधिक कुछ नहीं थे। यह पचाना मुश्किल होगा ही, लेकिन हमारे लिए यह आज जरूरी है।

बहुत लंबी प्रस्तावना लिखने से बचते हुए इतना ही कहूँगा कि यह पुस्तक अपने परिचय के कॉलेज जाने वाले युवक और युवतियों को अवश्य भेंट देने लायक है। बड़ों को भी दे सकते हैं, जो जब जागे तब उसके लिए सवेरा, सही है ना ?

- पुष्पेंद्र कुलश्रेष्ठ

सूची

1: वामपंथ : अँधेरे में शत्रु

लड़ाइयाँ सबसे ज्यादा कब होती हैं?

ज्यादातर हमले रात में होते हैं। क्यों? क्योंकि दुश्मन अंधेरे में छुपकर वार करता है।

नहीं दिखाई देना एक बड़ी ताकत है। वही शत्रु ज्यादा खतरनाक है जो दिखाई नहीं देता।

कुछ दिन पहले मैंने कहा – हमारा सबसे बड़ा शत्रु वामपंथ है...तो मेरे एक मित्र ने कहा – क्या बात करते हैं? कहाँ है वामपंथ? बंगाल और केरल छोड़कर कहीं नहीं है...पूरी दुनिया से खत्म हो गया...

क्या सचमुच वामपंथ खत्म हो रहा है? क्या सोवियत रूस का पतन वामपंथ की हार है? या चाल है?

सच तो यह है कि वामपंथ पहले से कई गुना ज्यादा मजबूत हुआ है। आज वामपंथ समाज के और जीवन के हर पक्ष में घुस गया है। पर आज वह किसी कम्युनिस्ट या मार्कसिस्ट नाम से नहीं है, बल्कि उदारवाद और आधुनिकता के नाम पर घूम रहा है। वह एक पॉलिटिकल पार्टी नहीं है, एक सामाजिक आंदोलन है। पर वह अलग से दिखाई नहीं देता और उसका दिखाई नहीं देना ही उसकी सबसे बड़ी ताकत है।

सच तो यह है कि वामपंथ ने अपने मसीहा कार्ल मार्क्स को त्याग दिया है। आज वह उससे कहीं ज्यादा खतरनाक और जहरीला हो गया है। समाज के स्थापित मूल्यों और मानकों को बदल रहा है, विकृत और भ्रष्ट कर रहा है। आज वामपंथ पॉलिटिकल करेक्टनेस के नाम से समाज को संचालित कर रहा है...सत्ता किसी की भी हो, सत्ता का एजेंडा यही निर्धारित कर रहा है...वामपंथ किन किन रूपों में हमें संचालित कर रहा है, यह पहचानना आज हमारे सामने सबसे बड़ी वैचारिक चुनौती है...

एक उदाहरण दूँ? आप सोचते हैं कि सोवियत रूस के टूटने से वामपंथ पराजित हो गया? तो इसे देखें...क्या आप जानते हैं कि बराक ओबामा और हिलेरी क्लिंटन वामपंथी हैं?

सोवियत संघ एक शत्रु था जिसके भय या विरोध के नाम पर अमेरिकी तंत्र में वामपंथियों की स्वीकार्यता कठिन थी। सीनेटर जोसफ मैककार्थी का काल था जब अमेरिका में वामपंथी होना अपराध था और लोग वामपंथी होने के शक में जेल चले जाते थे। सोवियत के टूटने से अमेरिका का वामपंथ विरोध का तर्क खत्म हो गया...और सॉल अलिन्सकी जैसे कम्युनिस्ट को गुरु मानने वाले बराक ओबामा अमेरिका का राष्ट्रपति बन सके। गोर्बाचेव का पतन तो चेस के खेल का पॉन सैक्रिफाइस है।

आप उनका प्यादा काट कर खुश हो रहे थे...उन्होंने वजीर काट दिया...

आप सोचते हैं कि त्रिपुरा में सी.पी.एम. का चुनाव हारना कम्युनिष्टों के एक और किले का ध्वस्त होना है?

आप कुछ अनदेखा कर रहे हैं। जब एक सेना डिफेंसिव होती है तो वह किले में बंद होती है। जब वह ऑफेंसिव होती है तो यह किलेबंदी उसके लिए बेकार और महत्वहीन हो जाती है। आक्रामक सेनाएँ किलेबंदी में नहीं होतीं, वे मैदान में होती हैं...नए नए पोस्ट्स पर कब्जा करती हैं।

कम्युनिस्ट अब अपने बंगाल और त्रिपुरा के किलों को छोड़ चुके हैं। वे आक्रामक हो गए हैं। किले से निकल कर मैदान में, समाज में आ गए हैं...शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता, कानून के मैदानों में मोर्चा ले लिया है...उनकी सोच ही समाज की स्थापित सोच बन रही है...प्रधानमंत्री भी उनकी भाषा के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करते...बोलते ही वह विवादास्पद हो जाएगा।

शासन उसका नहीं होता जो कुर्सी पर बैठा है, उसका होता है जिसकी बात वह कुर्सी पर बैठा आदमी सुनता है।

जिनके सिद्धांत समाज के स्थापित मूल्य हैं, उन्हीं की सत्ता है। जिसके पास 'पॉलिटिकली करेक्ट' की परिभाषा देने का अधिकार है वह सर्वशक्तिशाली है।

चुनाव-उनाव तो बच्चों के खेल हैं...खेलते रहिये...

2: पहले डायग्नोसिस, फिर इलाज

आज वामपंथी पिछली पीढ़ी के वामियों की तरह झोला टाँग कर और दाढ़ी बढ़ा कर इंकलाब जिंदाबाद का नारा नहीं लगाते। नास्तिक नहीं कहते खुद को, हो सकता है हमसे आपसे ज्यादा धर्मग्रंथों के उद्धरण देते हों, पौराणिक कहानियों की भी खूब जानकारी रखते हैं, क्योंकि उन्हें तोड़ मरोड़ कर उन्हें सामाजिक विघटन का बारूद बनाना होता है...और अपने को वामपंथी तो बिल्कुल नहीं कहते।

कुछ दिनों पहले एक वामपंथी सज्जन ने खूब घुल-मिल कर बात की, वेद-पुराण-गीता रामकृष्ण-विवेकानंद की बात की...अगले दिन फेसबुक पर देखा, उन्हें कुलभूषण जाधव और अफजल गुरु में अंतर नहीं समझ आ रहा था... विदा किया..

आज एक मित्र प्रश्न उठा रहे थे कि कैसे जानते हैं कि खालिद और कन्हैया भारत तोड़ो के नारे लगा रहे थे? हो सकता है राष्ट्रवादी लोग ही लगा रहे हों, या सरकार या आइबी ने वो नारे लगवाए हों। कैसे कह सकते हैं कि वामपंथी गद्दार हैं...वामपंथियों की दृष्टि में राष्ट्रवादी गद्दार होंगे...

भ्रम फैलाना वामपंथी का एक और हथियार है। बात कितनी भी स्पष्ट हो, वे विद्वता और कुतर्क का ऐसा गुबार खड़ा कर देंगे कि सच छुप जाए।

एक गाँव में एक चोर घुसता है...वह चोरी करके पूरब की ओर भागता है...जब पूरा गाँव उसे दौड़ा रहा होता है तो दूसरा एक चोर पश्चिम की ओर मुँह करके चोर-चोर चिल्लाते हुए दूसरी तरफ भागता है और लोगों को कहता है - आपको कैसे पता कि जो पूरब की तरफ भाग रहा है वही चोर है? हो सकता है चोर पश्चिम की तरफ भागा हो...

पुराने मार्क्सवादी वामपंथी डाकू थे। वे सर पर पगड़ी बाँध कर, दाढ़ी बढ़ा कर कंधे पे बंदूक रखकर आते थे और गाँव के बीच पहुँच के फायर करते थे और

ऐलान करते थे कि डाकू आ गए हैं। नए वामपंथी चोर हैं। और ये ऐसे ही झुण्ड में काम करते हैं और जब एक चोर को लोग पकड़ने पूरब की ओर दौड़ते हैं तो दूसरा चोर उन्हें पश्चिम की तरफ भटकाता है...

ऐसे भ्रम फैलाते लोग दिखें जिनका मुँह पूरे गाँव से दूसरी ओर है...तो वह वामपंथी है...वह दूसरा चोर है। उसे पकड़ कर ठोक सकें तो ठीक है...नहीं तो कम से कम अपने घर के दरवाजे पर नजर रखें, वह आपके घर में तो नहीं घुस रहा...

'सिंड्रोम' शब्द तो सुना होगा। जैसे एड्स का पूरा नाम है 'अक्वायर्ड इम्यून डेफिशियेंसी सिंड्रोम' और भी सुने होंगे डाउन्स सिंड्रोम, एडिसन सिंड्रोम इत्यादि।

सिंड्रोम शब्द का अर्थ क्या है? साइन और सिम्पटम्स का समूह, जो एक साथ किसी व्याधि में प्रकट होता है। इसे 'डिजीज' शब्द से थोड़ा अलग प्रयोग करते हैं। जैसे डाउन्स सिंड्रोम को लें। आप शक्ल देख कर ही समझ जाते हैं कि यह व्यक्ति डाउन्स बेबी है। गोल चेहरा, चिपटी नाक, छोटी मंगोलियन आँखें, बड़ी सी जीभ...पर जब आप डाउन्स सिंड्रोम को पहचान लेते हैं तो आप और भी बहुत कुछ अपने आप जान जाते हैं। जैसे कि आपको मालूम है कि यह बच्चा अविकसित बुद्धि, लो आईक्यू का होगा। अक्सर वे शांत और संगीत प्रेमी होते हैं पर उनमें ADHD या ऑटिज्म भी अक्सर मिलता है। आपको मालूम है कि उनके हाथ में एक सिंगल क्रीज होगी, उंगलियाँ छोटी और हाथ चौड़े होंगे। उनमें हार्ट की बहुत-सी समस्याएँ होंगी, हार्ट की वाल्व और सेप्टम में खराबी होगी। यानी शक्ल देखकर आप बीमारी पहचानते हैं और बहुत कुछ जो आपने अभी देखा नहीं है, बिना देखे जान जाते हैं। आप जान जाते हैं कि उनमें 21वें क्रोमोजोम की संख्या दो के बजाय तीन है।

वामपंथ ऐसा ही है...वामपंथ सिन्ड्रोमिक है। अगर आपको एक लक्षण दिखाई देता है तो आप दूसरा खोज सकते हैं। अगर एक व्यक्ति आपको

'जनवाद','शोषण','पूँजीपतियों के षड्यंत्र' जैसे शब्द बोलता सुनाई पड़ता है तो समझ लें सतह कुरेदने पर और कुछ बातें मिलेंगी। नारी के अधिकार, अल्पसंख्यकों पर अत्याचार, युद्ध की विभीषिका, अमन की आशा जैसे नारे मिलेंगे। सीरिया के बच्चों का रोना-धोना मिलेगा, ग्लोबल वार्मिंग की चिंता मिलेगी, मदर टेरेसा की मूर्ति मिलेगी, समलैंगिकता का समर्थन मिलेगा, मोदी और ट्रम्प का विरोध मिलेगा...भीतर छुपी हुई हिन्दू धर्म के प्रति गहरी घृणा मिलेगी। राष्ट्रद्रोहियों और जिहादियों के लिए सहानुभूति मिलेगी। ऊपर केक की आइसिंग की तरह पर्यावरण की चिंता, पशुओं के प्रति करुणा, कमजोर और शोषितों के अधिकारों की लड़ाई, बच्चों की सुरक्षा की चिंता...समस्याएँ ही समस्याएँ दिखेंगी। समाधान की बात करते ही उन्हें आपके समाधान में फॉसिज्म की गंध आने लगेगी।

इनमें से कई अच्छी नीयत वाले भले लोग हैं। इन्हें मैं 'ब्लीडिंग हार्ट सिंड्रोम' कहता हूँ। खास तौर से कम समझ और गहरी संवेदना वाली लड़कियाँ जिनके सर से पैर तक दिल ही दिल है, दिमाग की जगह ही नहीं बची।

पर पूर्ण विकसित 'लेफ्टिस्ट सिंड्रोम' ज्यादा विषैला और खतरनाक है। उनके अंदर हिन्दू धर्म के प्रति घृणा और राष्ट्र के प्रति द्रोह बहुत ही गहरा है। उनमें आपको दलित-हित-चिंतक सर्वोपरि मिलेंगे। आज उनके साथ जाट-हित और पटेल-हित चिंतक भी मिल गए हैं। खालिस्तानी सोच वाले सिख भी उन्हीं के भाई-बंधु हैं। दलितों की चिंता में सूख रहे बिहार, यूपी के ब्राह्मणों और भूमिहारों की अच्छी खासी संख्या मिलेगी, जिनमें इस सिंड्रोम का मुख्य लक्षण मोदी-विरोध है।

अगर आपको 2012-13 में अरविंद केजरीवाल जी ईमानदार लगता थे तो इसका मूल कारण था कि आपने उनमें छिपे वामपंथी को नहीं पहचाना था। एनजीओ के धंधे में लगे लोग, आईआईटी वाले, भूतपूर्व आईएएस, समाजसेवी आईएएस की बीबियाँ, सामाजिक सरोकारों वाले पत्तलकार... ये सब आसान मार्कर हैं जिनसे वाम-सिंड्रोम की पहचान होती है।

मूल विषय है इस वाम-सिंड्रोम की पहचान। राजनीति के घोषित वामपंथियों का तो हमने इलाज कर दिया। साहित्य, कला, समाजसेवा, पत्रकारिता, शिक्षा में इन्हें पहचानना जरूरी है। तो जहाँ कहीं किसी अन्याय-अत्याचार पर खून के आँसू बहाते लोग दिखें, 'ब्लीडिंग-हार्ट सिंड्रोम' दिखे...आगे खोजिये। एक लक्षण मिले तो दूसरा खोजिये। क्योंकि पहले डायग्नोसिस, फिर इलाज।

3. वामपंथ का किला : अमेरिका

उस समय की बात है जब अरविंद केजरीवाल जी नये नये आये थे और दुनिया उनकी नीयत को लेकर भ्रमित थी। तब मैंने एक सज्जन को कहा – मुझे अरविंद केजरीवाल जी को पहचानने में कोई दुविधा नहीं है...यह वामपंथी है और इसलिए इसकी चिंताएँ भी वामपंथी हैं। उसकी सबसे बड़ी चिंता है कि मोदी को कैसे रोकें। उनका कांग्रेस से विरोध बस इतना ही है कि कांग्रेस अगर इतना भ्रष्टाचार करेगी तो भाजपा आ जायेगी।

उन्होंने पूछा – कल तुम कह रहे थे कि अरविंद केजरीवाल अमेरिकन एजेंट हैं, आज कह रहे हो कि वह वामपंथी हैं...ऐसा कैसे है?

हम भारतीय बॉलीवुड देखते हैं। हमारी सोच में सबकुछ बॉलीवुड की कहानियों जैसा ब्लैक एंड व्हाइट होता है। अमेरिका माने पूँजीवाद, रूस माने साम्यवाद, कम्युनिस्ट माने सी.पी.एम.. हम इन्हें ग्लोबल शक्तियों की तरह देखने में असमर्थ हैं। वामपंथी सिर्फ सी.पी.एम. में नहीं हैं। बड़ी संख्या में कांग्रेसी वामपंथी हैं। संघ और भाजपा तक में लोगों की सोच को वामपंथी विचारों से इन्फेक्ट किया गया है।

हम हमेशा जानते हैं कि अमेरिका वामपंथ से लड़ा। पर अगर वामपंथ रूस की समस्या होती तो अमेरिका को इससे लड़ने में सर खपाने की क्या आवश्यकता थी? विएतनाम में जाकर बम गिराने और अपने सैनिकों को मरवाने में अमेरिका का क्या इंटरेस्ट होता? और अगर आप अमेरिका को समझेंगे तो यह भी समझेंगे कि अमेरिका बिना अपने इंटरेस्ट के कोई भी काम क्यों करेगा?

वामपंथ सिर्फ रूस, चीन और पूर्वी यूरोप की समस्या नहीं थी। यह पश्चिमी यूरोप और अमेरिका की भी समस्या थी। अमेरिकी तंत्र में वामपंथी प्रभाव भी बहुत गहरा था। बल्कि दुनिया में ज्यादा प्रमुख वामपंथी चिंतक अमेरिका और यूरोप से ही हुए। रूस से कोई नहीं हुआ...वहाँ तो जिसने सोचने की कोशिश की उसे मार दिया। सत्ता मिल गयी, अब यह चिंतन विन्तन छोड़ो...

4: जोसेफ मैक्कार्थी - एक अकेली लड़ाई

अमेरिका के वामपंथ के विरुद्ध संघर्ष में कोई अकेला नाम सबसे महत्वपूर्ण है तो वह है—सीनेटर जोसफ मैक्कार्थी का। मैक्कार्थी ने 1950-56 के बीच अमेरिका में कम्युनिस्टों के विरुद्ध जंग छेड़ रखी थी। उन्होंने वामपंथ के विभिन्न घटकों को पहचाना और दावा किया कि कम्युनिष्ट अमेरिकी तंत्र में अंदर तक घुसे हुए हैं। उन्होंने पहचाना कि कम्युनिस्ट अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेंट, व्हाइट हाउस, जुडिशरी, मीडिया, हॉलीवुड, यूनिवर्सिटीज और यहाँ तक कि सीआईए और अमेरिकी सेना तक में घुसपैठ कर गए हैं।

मैक्कार्थी के इस दावे की बहुत ही तीखी प्रतिक्रिया हुई। सारे साँप बिच्छू बिलबिलाकर बिलों से निकले और मैक्कार्थी पर टूट पड़े। सबने उसे डिस्क्रेडिट करने की मुहीम छेड़ दी। मैक्कार्थी को झूठा और शक्की करार दिया गया। मीडिया ने स्वतंत्रता और संवैधानिक अधिकारों की दुहाई देनी शुरू कर दी। उसके कदमों को डेमोक्रेसी का होलोकास्ट करार दिया गया। यानी हम जो आज भारत में असहिष्णुता का हल्ला सुन रहे हैं, उससे कई गुना जोर का हंगामा शुरू हुआ।

लेकिन मैक्कार्थी का निश्चय दृढ था। आलोचना की ज़रा भी परवाह किये बिना वह अपनी लड़ाई में लगा रहा। उसने हजारों संदिग्ध कम्युनिस्टों को पकड़-पकड़ कर पूछताछ शुरू की। परमाणु और रक्षा प्रतिष्ठान में काम कर रहे अनेक रूसी जासूसों को पकड़ा, विश्वविद्यालयों में घुसे वामपंथियों की नाक में दम कर दिया। अखबारों के संपादक, हॉलीवुड के सितारे, सरकारी दफ्तरों में बैठे बाबुओं पर पुलिस ने नजर रखना और रस्ते पर लाना शुरू किया। अमेरिकी वामपंथी गिरोह में भगदड़ मच गयी। कोई भी अछूता नहीं रहा, सब पर नजर रखी जाने लगी। खुद राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति के अपने स्टाफ भी निगरानी के दायरे में थे।

कम लोग जानते हैं कि बाद में राष्ट्रपति बने और कम्युनिज्म के कट्टर दुश्मन रोनाल्ड रेगन को भी मैक्कार्थी कमीशन के सामने तलब किया गया था। उस समय रेगन अपने विचारों में लिबरल और डेमोक्रैट हुआ करते थे और उस समय वे हॉलीवुड की स्क्रीन एक्टर्स गिल्ड के प्रमुख थे।

पर रेगन अपने लिबरल रुझान के बावजूद देशद्रोही नहीं थे। उनसे पूछ-ताछ की गयी तो उन्होंने कमीशन से सहयोग करने का निर्णय लिया और अपने साथी कलाकारों के बारे में जरूरी जानकारी प्रदान करने के लिए तैयार हो गए। उस समय रेगन को भी हॉलीवुड में कम्युनिस्ट हरकतों की बात बहुत दूर की कौड़ी लगी होगी। लेकिन जब इस सिलसिले में उन्होंने इस विषय पर आँखें खोल कर देखना शुरू किया तो उनका माथा ठनका। उनके अनेक साथी उन्हें अविश्वसनीय रूप से कम्युनिस्ट सोच से ग्रसित मिले जिनके लिए अमेरिका के हितों को नुकसान पहुँचाना और देश से विश्वासघात करना एक बड़े उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग लगता था। इस अनुभव ने रेगन को बदल कर रख दिया और उनके राजनीतिक जीवन को नयी दिशा दी। आगे चलकर हमने रेगन में कम्युनिज्म के विरुद्ध प्रतिबद्ध एक राजनायक पाया।

पर मैक्कार्थी की राह आसान नहीं थी। उन्होंने मगरमच्छों के जबड़े में हाथ डाल दिया था। इतने बड़े-बड़े और प्रभावी शत्रु बना लिए थे कि उनसे निपटना आसान नहीं रह गया था। अमेरिका में सैन्य सेवा अनिवार्य थी। मैकार्थी ने स्वयं द्वितीय विश्व युद्ध लड़ा था और मेजर के पद तक गए थे। हालाँकि उन्हें अपनी जुडिशल सर्विस की वजह से सैन्य सेवा से छूट मिली हुई थी, फिर भी मैक्कार्थी ने विश्वयुद्ध के लिए वालंटियर किया था। जब मैक्कार्थी ने सीआईए और सेना में कम्युनिस्ट घुसपैठ की बात की और सेना के उच्च अधिकारियों की संलिप्तता की जाँच करनी चाही तो यह उन्हें महँगा पड़ गया। पर मैक्कार्थी शत्रु की शक्ति से झुकने वालों में नहीं गिने जाते थे।

उस समय मैक्कार्थी ने एक युवा सहयोगी को पाया जो उन्हें काम का लगा। वह था एक युवक डेविड शाइन। शाइन एक होटल की चेन का मालिक था। उसी दौरान डेविड शाइन ने एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी – 'डेफिनिशन ऑफ कम्युनिज्म' जिसमें उसने कम्युनिज्म के खतरों के बारे में आगाह किया था। शाइन के होटल के हर कमरे में उस पुस्तिका की एक कॉपी रहती थी। जब यह पुस्तिका मैक्कार्थी की दृष्टि में आयी तो वह उसके इस प्रयास से बहुत प्रभावित हुआ।

शाइन ने अनिवार्य सैनिक सेवा एक सामान्य सिपाही 'प्राइवेट डेविड शाइन' के रूप में ज्वाइन की। पर अपनी कम्युनिस्ट विरोधी राजनीतिक विचारधारा और मैक्कार्थी से परिचय की वजह से शाइन संभवतः शक की नजर से देखा जाने लगा और उसे मैक्कार्थी का आदमी मान लिया गया। यह बात उसके कुछ वरीय सैन्य अधिकारियों को अखर गयी और शाइन की गर्दन उनकी मुट्ठी में आ गयी। इस बीच मैक्कार्थी ने अपने स्टाफ की मार्फत शाइन को अफसर बनाने की सिफारिश कर दी जहाँ उसकी बौद्धिक क्षमता का पूरा प्रयोग हो सके।

सेना के अधिकारियों ने इस बात का पूरा बखेड़ा खड़ा कर दिया कि मैक्कार्थी सेना के काम काज में दखल देना चाहते हैं और वे सेना को तोड़ देने की धमकी दे रहे हैं। दुश्मन तो मैक्कार्थी के थे ही। तो यह बात कांग्रेशनल कमिटी तक गयी और पूरे देश के सामने मैक्कार्थी की पेशी हुई। मैक्कार्थी ने सेना पर यह आरोप लगाया कि सैन्य अधिकारी कम्युनिस्ट गतिविधियों में संलिप्त होने की जाँच के डर से घबराये हुए हैं और इस छोटे से मुद्दे को उछाल कर मैक्कार्थी पर दबाव बनाने की कोशिश कर रहे हैं, जिससे वह अपने जाँच ढीली कर दे।

36 दिनों तक मैक्कार्थी ने पूरे देश की मीडिया, कांग्रेस और सैन्य संस्थानों का दृढ़ता से सामना किया और सिर्फ जवाब ही नहीं दिया, बल्कि तीखे सवाल किये जिनका जवाब देना मुश्किल हो रहा था। लेकिन व्यवस्था में बैठे मगरमच्छों ने मैक्कार्थी से पीछा छुड़ाने का फैसला कर लिया था। मैक्कार्थी के विरुद्ध कांग्रेस

ने निंदा प्रस्ताव पास किया और इस झटके से वह राजनीतिक रूप से कभी नहीं उबर सका। उसकी लोकप्रियता, सर्वमान्यता और राजनीतिक प्रभाव कम हो गया था, लेकिन कम्युनिज्म के विरुद्ध उसके तेवर धीमे नहीं हुए।

तीन वर्षों के भीतर, सिर्फ 48 वर्ष की आयु में वह एक दिन घुटने में दर्द की शिकायत के साथ मेरीलैंड के सैनिक हस्पताल में भर्ती हुआ, जहाँ कुछ दिनों के भीतर ही उसकी रहस्यमय रूप से मृत्यु हो गयी। उसका लीवर बुरी तरह से खराब हो गया, जिसके लिए मीडिया ने अल्कोहल को दोषी घोषित किया, हालाँकि वह उस समय तक बिलकुल स्वस्थ था। उसकी मृत्यु के लिए अनेक कांस्पीरेसी सिद्धांत दिए गए, जिनमें इसे एक सुनियोजित हत्या बताया गया। पर इसमें शक नहीं है कि मैक्कार्थी की राजनीतिक हत्या बहुत पहले हो चुकी थी।

केरल के वामपंथी मंत्री ने एक बार कम्युनिस्ट हत्यारों और गुंडों की तारीफ में यह कहा कि अपने शत्रु की हत्या का उनका तरीका बहुत सटीक है – वे मार कर लाश खुले में नहीं छोड़ते हैं, बल्कि जमीन के नीचे नमक के साथ गाड़ देते हैं जिससे लाश बिलकुल गल जाये और कुछ भी ना बचे। अमेरिकी वामपंथियों ने भी मैक्कार्थी के साथ कुछ ऐसा ही किया। ना सिर्फ उसकी राजनीतिक हत्या कर दी, बल्कि उसकी राजनीतिक विरासत को जमीन के नीचे नमक डाल कर दफना दिया। आज भी अमेरिकी राजनीतिक सन्दर्भ में मैककार्थिज्म एक बुरा शब्द गिना जाता है – यह बेवजह शक और झूठ का पर्याय गिना जाता है जिसकी आड़ में वामपंथी छुपे रहते हैं। उनके किसी भी षड्यंत्र के विरुद्ध कुछ भी बोलने से इसे वे मैक्कार्थिज्म घोषित कर देते हैं और वे आपको ही शक्की और झूठा सिद्ध कर देते हैं। लेकिन यह भी सच है कि मैक्कार्थी ने अपने समय में अमेरिकी तंत्र के अंदर छुपे कम्युनिस्टों की कमर लगभग तोड़ दी थी और उसके बिना अमेरिका का इतिहास एक बेहद अँधेरी जगह लिखा गया होता।

5: जॉन एफ कैनेडी की महानता का सच

अमेरिकी वामपंथ की चर्चा एक नाम के बिना नहीं हो सकती - राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी, जो जैक कैनेडी या जेएफके के नाम से भी जाने गए।

कैनेडी का काल अमेरिकी राजनीती और समाज का संक्रांति काल समझा जाना चाहिए। यह समय था जब मैक्कार्थी का पतन हो चुका था और अमेरिकी समाज में रेडिकल यानि वामपंथी कहलाना खतरे की बात नहीं रह गयी थी। समाज सिविल लिबर्टी मूवमेंट, नारीवाद और सांस्कृतिक मार्क्सिज्म के अनेक प्रयोगों से गुजर रहा था और सामान्यतः परम्परावादी अमेरिकी राजनीती में इस परिवर्तन का लाभ उठाने का लालच स्वाभाविक था।

ऐसे समय में अमेरिकी राजनीती में कैनेडी का उदय एक धूमकेतु की तरह हुआ। सुन्दर शक्ल, अच्छी वक्तृता और एक बेहद खूबसूरत पत्नी की चमक दमक के साथ कैनेडी राजनीती के रॉक स्टार बन कर उभरे।

राजनीति में कैनेडी का लॉन्च बॉलीवुड के कपूर खानदान के किसी नए सितारे के लॉन्च की तरह धूमधाम से हुआ। उसके पिता जोसफ कैनेडी, या 'जो कैनेडी सीनियर' भी एक समय राष्ट्रपति पद के प्रबल दावेदार गिने जाते थे, लेकिन रूजवेल्ट के असाधारण लम्बे राजनीतिक करियर में जो-सीनियर का करियर वैसे ही दबा रह गया जैसे भारतीय क्रिकेट में धोनी के समय के दूसरे विकेटकीपर।

साथ ही उन्होंने एक बड़ी गलती कर दी - ब्रिटेन में अमेरिका के राजदूत के पद पर रहते हुए उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में अप्रत्यक्ष रूप से हिटलर का साथ देने की वकालत की थी। यह उसे बहुत भारी पड़ गया और इस एक निर्णय ने उसका राजनीतिक जीवन खत्म कर दिया।

पर इसकी भरपाई करने के लिए उन्होंने अपने बेटों, जो कैनेडी जूनियर और जैक...दोनों को फौज में भेज दिया। उनका बड़ा बेटा जो-जूनियर बाप की

राजनीतिक विरासत का मालिक और भविष्य का राष्ट्रपति समझा जा रहा था पर वह एक हवाई मिशन में मारा गया।

फिर पापा कैनेडी ने अपने दूसरे बेटे जैक को राजनीति में लॉन्च कर दिया। उस समय तक जैक बिल्कुल पप्पू था, वह चार लाइन बोल भी नहीं सकता था। पर उसकी खूब ट्रेनिंग, मार्केटिंग, ब्रांडिंग की गई। पप्पू के पप्पा ने उस पर इतना पैसा खर्च किया कि उनका कहना था कि इतने में तो वह अपने ड्राइवर को भी सीनेटर बना सकते थे।

1959-60 का वह राष्ट्रपति चुनाव एक रॉक कॉन्सर्ट की तरह चला। फ्रैंक सिनात्रा जैसे पॉप स्टार्स ने कैनेडी के लिए प्रचार किया और गाने गाए। साथ में उसकी सुंदर बीबी जैकलीन केनेडी ने खूब भीड़ खींची। नए नए आये टेलीविजन डिबेट ने इस चुनाव को एक रियलिटी शो में बदल दिया। और इस ग्लैमर और तड़क भड़क के बीच कैनेडी ने अपने प्रतिद्वंदी धीर गंभीर पर चमक दमक से रहित उपराष्ट्रपति निक्सन को बेहद नजदीकी मुकाबले में बहुत ही मामूली अंतर से हरा दिया।

कैनेडी मीडिया और हॉलीवुड के लिबरल्स का दुलारा था। पर सच यही है कि नौसिखिया ग्लैमर बॉय राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठने के बाद अमेरिकी राजनीति का पप्पू बन गया। उसने पूरे एडमिनिस्ट्रेशन को अपनी तरह के अनुभवहीन ड्रामेबाजों से भर दिया, जिन्हें शासन चलाने की कोई समझ नहीं थी। अगर कालांतर में उसकी हत्या नहीं हो गई होती तो वह राष्ट्रपति के नाम पर मजाक ही सिद्ध होता।

शीतयुद्ध के क्रूर वैश्विक माहौल में कैनेडी रूसी राष्ट्रपति ख्रुश्चेव के सामने बिल्कुल बौना साबित हुआ। विएना समिट में ख्रुश्चेव ने मनोवैज्ञानिक रूप से कैनेडी का बलात्कार कर दिया। फिर उसने क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो को हटाने के नाम पर क्यूबाई विद्रोहियों की पूरी-पूरी फौज को बे ऑफ पिग्स में एक मूर्खतापूर्ण मिशन में मरने के लिए भेज दिया, जिसमें अमेरिका की बड़ी किरकिरी हुई। कैनेडी का वियतनाम युद्ध भी एक भयंकर भूल ही साबित हुआ।

1962 में बेहद आक्रामक रूस ने क्यूबा में अमेरिका की नाक के नीचे अपने मिसाइल तैनात कर दिए। उस समय अमेरिका और रूस के बीच का शीतयुद्ध सचमुच के परमाणु युद्ध के बिल्कुल करीब पहुँच गया था। क्यूबा मिसाइल क्राइसिस में कैनेडी ने रूस के सामने खूब बाजू चढ़ाए और बड़ी-बड़ी भाषणबाजी की। पर सच्चाई यह रही कि कैनेडी की सिट्टी-पिट्टी गुम थी। कैनेडी ने पर्दे के पीछे रूस से गुपचुप समझौते करके जैसे-तैसे मामला रफा दफा किया। ख्रुश्चेव के लिए भी कैनेडी की साख बचाना फायदे की बात थी, क्योंकि उसे अपने सामने यह दब्बू, अनुभवहीन और ड्रामेबाज राष्ट्रपति दूसरे किसी भी विकल्प से बेहतर लग रहा था।

1964 में कैनेडी की हत्या हो गई। उसकी हत्या के संभावित कारणों की लिस्ट बहुत बड़ी है। पर यह मानने का पर्याप्त कारण है कि उसकी ऊल-जलूल विदेश नीतियों से अमेरिका को बचाने के लिए सीआईए ने उसकी हत्या करवाई होगी।

कैनेडी अपने शासन काल में कम्युनिस्टों के विरुद्ध बड़ी-बड़ी बातें बोलने के लिए जाना गया। लेकिन सच तो यह है कि उसके शासन काल में अमेरिका में वामपंथ खूब फला फूला। अपने एडमिनिस्ट्रेशन के सहयोगियों से ज्यादा वह ख्रुश्चेव के साथ अपनी बैक डोर डिप्लोमेसी पर भरोसा करता था। ख्रुश्चेव के साथ उसकी तनातनी भी उसकी इमेज बिल्डिंग के लिए एक तरह का फिक्स्ड मैच था। एक तरफ उसने मुँह से कम्युनिज्म के विरुद्ध खूब बोला, दूसरी तरफ उसकी नीतियों ने हर जगह वामपंथ को बढ़ावा दिया। कैनेडी एक क्लोजेट कम्युनिस्ट था, यह आज समझना कठिन नहीं है।

पर उसे इसका बदला भी खूब मिला। इतने खराब शासनकाल के बावजूद वह एक महान राष्ट्रपति गिना गया। उसका व्यक्तिगत जीवन भी बहुत रंगीन था। उसके दर्जनों अफेयर थे। वह किसी भी औरत को देख कर रुक नहीं पाता था। उसने व्हाइट हाउस में काम करने वाली सफाई कर्मचारियों को भी नहीं बख्शा। यह सब खुलेआम हर किसी को मालूम था। पर उसके जीते जी उसकी कोई

करतूत कभी अखबारों में नहीं आई। उसका कोई मी टू नहीं आया...उसके जिंदा रहते मीडिया ने उसकी छवि बना कर रखी ही, मरने के बाद तो वह महान लिबरल मसीहा हो गया।

वह अमेरिका के अश्वेतों से बहुत सहानुभूति रखता था। उनके लिए अच्छी अच्छी बातें करता था। पर उसने अमेरिका से सेग्रेगेशन यानी अश्वेतों से भेदभाव हटाने का कोई प्रयास नहीं किया, कोई कानून नहीं लाया। यह वामपंथियों की खास कार्य-पद्धति है। वे एक अन्याय खोजते हैं, उसका जम के विरोध करते हैं, उसे लेकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं। पर उस अन्याय को खत्म किया जाए यह नहीं चाहते। जब तक वह अन्याय बना रहेगा, उसपर विरोध और संघर्ष का खेल चलेगा, उससे वामियों की दुकान चलेगी। कैनेडी का अमेरिकी सिविल राइट्स आंदोलन के प्रति रवैया इसका बेहतरीन उदाहरण है।

अपने शत्रु को कोई पसंद नहीं करता। उसे सभी राह से हटाना चाहते हैं। अमेरिकी जासूसी और सामरिक तंत्र ने कैनेडी को खतरा समझा, उसे रास्ते से हटा दिया। उसकी हत्या कर दी। लेकिन कैनेडी इतिहास में बना रहा। सारी पप्पूगिरी के बावजूद महान गिना जाता रहा। वह मीडिया और लिबरल गैंग की आँखों का तारा है। कैनेडी मरा नहीं।

पर वामियों का अपने दुश्मन को रास्ते से हटाने का तरीका इससे बहुत ज्यादा कारगर है। वे गोली नहीं मारते। वे जंगली कुत्तों की तरह घेर के शिकार करते हैं। अपने शिकार को नोच कर खा जाते हैं। उसकी हड्डियाँ तक नहीं छोड़ते। उसका नामो-निशान नहीं छोड़ते। वामियों ने इसी तरह घेर कर मैक्कार्थी का शिकार किया था। आगे चल कर उन्होंने वैसे ही घेर कर राष्ट्रपति निक्सन का शिकार किया और आज बिल्कुल उसी तरह डोनाल्ड ट्रम्प के पीछे जंगली कुत्तों की तरह पड़े हुए हैं। उन्हें बंदूकों से परहेज नहीं पर राजनीतिक हत्याएँ करने के लिए उन्हें बंदूक नहीं उठानी पड़ती। उनके हथियार ज्यादा घातक हैं, उनका शिकार जीते जी अपने राजनीतिक सामाजिक जीवन में ही नहीं, इतिहास में भी मर जाता है।

6 : रिचर्ड निक्सन : शेर हुआ कुत्तों का शिकार

अमेरिकी लिबरलों ने 50 के दशक में घेर कर कम्युनिज्म विरोधी सीनेटर जोसफ मैक्कार्थी का शिकार किया। वहीं उनका अगला शिकार हुए राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन।

मैक्कार्थी और निक्सन में रिपब्लिकन होने के अलावा एक और बात समान थी। दोनों की कम्युनिस्टों के विरुद्ध प्रतिबद्धता। दोनों ने अपना पूरा राजनीतिक कैरियर अमेरिकी राजनीति और प्रशासन में कम्युनिस्टों के विरोध पर बनाया। दोनों का नाम एक संस्था से जुड़ा रहा - HUAC यानी हाउस अन-अमेरिकन एक्टिविटी कमिटी। यह एक संसदीय समिति थी जो 1938 से 1975 तक रही और जिसका काम कम्युनिस्ट गतिविधियों की जाँच करना था। इसने हजारों अमेरिकी कम्युनिस्ट जासूसों को पहचाना, पकड़ा, उनकी जाँच की और उन्हें सजा दिलाई।

निक्सन वर्षों तक लिबरल मीडिया के नंबर एक शत्रु रहे और एक फाइटर की तरह वे मीडिया से लड़ते रहे और उनकी छाती पर मूँग दल कर, मीडिया की सारी दुश्मनी के बावजूद दो बार राष्ट्रपति चुनावों में विजयी हुए। 1960 में मीडिया ने जम कर कैनेडी का पक्ष लिया और मीडिया की भारी पक्षपातपूर्ण कवरेज से मदद पाकर कैनेडी मामूली अंतर से जीते। वह अमेरिकी इतिहास का सबसे नजदीकी चुनाव था, और अमेरिकी लिबरल गैंग को लगा कि उन्होंने निक्सन से हमेशा के लिए छुटकारा पा लिया है।

लिबरल गैंग और मीडिया की निक्सन से दुश्मनी इससे पुरानी है। 1950 के दशक में HUAC में मैक्कार्थी के अलावा जिस सीनेटर ने अमेरिकी कम्युनिस्टों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया वह निक्सन थे। लिबरल दावा करते थे कि कम्युनिस्ट जासूसों और एजेंटों का खतरा झूठा और बढ़ा चढ़ा कर बताया हुआ

है। पर 1948 में एक अमेरिकी गवर्नमेंट ऑफिसियल एल्गर हिस्स पर जासूसी का मुकदमा चलाया गया। वह उस समय साक्ष्यों के अभाव में बच गया। पर 1950 में उसकी फिर से सुनवाई हुई और उस पर आरोप सिद्ध करने में निक्सन ने केंद्रीय भूमिका निभाई। हिस्स के चुराए हुए अनेक गुप्त सरकारी दस्तावेज और एक माइक्रोफिल्म पकड़ी गई, जिसे एक खेत में एक खोखले पम्पकिन में छुपाया गया था। ये दस्तावेज रूस को खुफिया जानकारी पहुँचाने के लिए चुराए गए थे, और इसने हिस्स का दोष साबित करने और उसे सजा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये दस्तावेज पम्पकिन पेपर्स के नाम से जाने जाते हैं।

इसमें सिर्फ हिस्स को सजा ही नहीं हुई, अमेरिकी सरकारी और सामाजिक संस्थाओं में कम्युनिस्ट घुसपैठ के दावों की पुष्टि भी हुई और उन लोगों की क्रेडिबिलिटी को बहुत गहरा झटका लगा जो इस खतरे का मजाक उड़ाते थे... उनमें डेमोक्रैट राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन भी थे जिन्हें हराते हुए आइजनहावर और निक्सन की टीम ने राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का पद पाया। पर अपने कम्युनिस्ट विरोधी रुख की वजह से निक्सन हमेशा लिबरल मीडिया के शत्रु बने रहे। और 1960 में चुनाव हारने के बाद निक्सन ने खुलकर मीडिया को पक्षपाती कहा और उनसे लड़ते रहे।

निक्सन संभवतः अपनी सदी के सबसे प्रभावशाली अमेरिकी राष्ट्रपति थे। उन्होंने वियतनाम युद्ध को समाप्त किया और चीन से संबंध बनाए। सबसे कठिन शीतयुद्ध के काल में निक्सन सारे मीडिया विरोध और पक्षपात, और घोर वामपंथी उपद्रवों के बावजूद 1972 में अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों के इतिहास में सबसे भारी बहुमत से दोबारा चुने गए। पर अपनी सारी उप्लब्धियों के बावजूद निक्सन को इतिहास जिस बात के लिए याद करता है वह था– वाटरगेट कांड।

आप सबने वाटरगेट कांड का नाम सुना होगा। 1972 में डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफिस में जासूसी के लिए टेप रिकॉर्ड करने वाले उपकरण लगाते हुए 5 लोग पकड़े गए। उनकी जाँच चली और अंत में राष्ट्रपति निक्सन से इसके तार जुड़े

पाए गए। निक्सन पर महाभियोग लाने की प्रक्रिया शुरू हुई और निक्सन को इस्तीफा देना पड़ा।

निक्सन का अपराध क्या था? उसने डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफिस में ही नहीं, पूरे व्हाइट हाउस में, लगभग सभी संवेदनशील ऑफिसों में, अनेक अखबारों के ऑफिस में बातचीत टेप करने की प्रक्रिया शुरू की थी। यह गैरकानूनी था और निक्सन को इसका नतीजा भुगतना पड़ा।

पर इसकी पृष्ठभूमि इससे बहुत ज्यादा गहरी है। निक्सन और वामपंथी ताकतों की लड़ाई निक्सन के राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग था। अमेरिका वियतनाम युद्ध से अपने हाथ खींचने की तैयारी कर रहा था। उसी समय व्हाइट हाउस में निक्सन अपनी बेटी की शादी की तैयारियों में भी व्यस्त थे। जिस दिन यह शादी थी ठीक उसी दिन वाशिंगटन पोस्ट ने अपने पहले पेज पर एक रिपोर्ट छापी जो अमेरिकी सेना के टॉप सीक्रेट दस्तावेज थे और पेंटागन से चुराए गए थे। ये पेंटागन पेपर्स के नाम से जाने जाते हैं।

माना जाता है कि यह टाइमिंग अनायास नहीं थी। निक्सन की सरकार को परेशान करने के अलावा अत्यंत व्यस्त निक्सन को व्यक्तिगत रूप से परेशान करने के लिए बिल्कुल उसकी बेटी की शादी के दिन यह रिपोर्ट छापी गई थी। निक्सन से मीडिया की यह दुश्मनी व्यक्तिगत किस्म की थी।

जवाब में निक्सन ने वाशिंगटन पोस्ट को व्हाइट हाउस से प्रतिबंधित कर दिया। साथ ही यह पता लगाने का काम अपने कुछ विश्वस्त स्टाफ को सौंपा कि यह लीक कहाँ से हो रही है। कई रिटायर्ड एफबीआई और सीआईए प्रोफेशनल्स की एक टीम बनाई गई जिन्हें प्लम्बर्स कहा गया क्योंकि इनका काम लीक को रोकना था।

इन्होंने व्हाइट हाउस के अंदर और सभी संवेदनशील ऑफिसों में होने वाली हर बातचीत को टेप करने का काम शुरू कर दिया। इसमें अनेक अखबारों के ऑफिस भी शामिल थे। हर बात पर नजर रखने और हर बात सुनने जानने की

यह उत्सुकता और जरूरत यहाँ तक बढ़ गई कि इन लोगों ने डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफिस को भी टेप करने की योजना बना ली जो वाटरगेट कांड के रूप में सामने आया। हालाँकि निक्सन को चुनाव जीतने के लिए यह सब करने की जरूरत नहीं थी। उन चुनावों के दौरान निक्सन आखिरी सप्ताह तक चुनाव प्रचार करते भी नहीं दिखे और अपना सामान्य कामकाज कर रहे थे।

वाटरगेट कांड को चुनावों से पहले खूब उछालने की कोशिश की गई। लेकिन जनता को यह प्रभावित नहीं कर सका और बिना विशेष प्रचार के निक्सन रिकॉर्ड बहुमत से जीत गए।

लेकिन वॉशिंगटन पोस्ट ने इस मुद्दे को खोदना जारी रखा। इस जाँच में एक एफबीआई डायरेक्टर अंदर की खबरें पोस्ट के रिपोर्टर तक पहुँचाता रहा जिसकी पहचान किसी को काफी समय तक नहीं मालूम थी। उसे पूरी जाँच के दौरान डीप थ्रोट के नाम से जाना गया।

ज्यूडिशरी ने भी इस पूरे मामले में असाधारण रुचि दिखाई और अंत में इस मामले में निक्सन की संलिप्तता सिद्ध करने में सफल हुए। आखिर में निक्सन को इस्तीफा देना पड़ा और अमेरिका के इतिहास के सबसे प्रभावशाली राष्ट्रपति का शानदार कार्यकाल इतिहास में गुमनामी और बदनामी में खो गया।

जंगली कुत्तों के बारे में कहा जाता है कि उनका झुंड शेर का भी शिकार कर लेता है। वामपंथी भी झुंड में शिकार करते हैं। वाटरगेट कांड इसका प्रमाण है कि कैसे मीडिया वालों, अंदर बैठे सरकारी बाबुओं और अति सक्रिय ज्यूडिशरी ने मिलकर बेहद भारी बहुमत से चुने हुए एक अमेरिकी राष्ट्रपति का शिकार कर लिया। सिर्फ उसे राजनीति से ही नहीं, इतिहास से भी मिटा दिया गया। आज आप निक्सन को और किसी वजह से नहीं, वाटरगेट कांड की वजह से जानते हैं।

निक्सन का दोष क्या था? उसने कुछ लोगों की बातचीत टेप की थी। यह गैरकानूनी था। पर इसकी तुलना उसके काल के कुछ अन्य अपराधों से कीजिये..

पेंटागन से टॉप सीक्रेट दस्तावेज चुराकर अखबार में छाप दिए गए और इसे अपराध नहीं गिना गया। विदेशों की शह पर अपने देश की सेनाओं के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किए गए और इसे अपराध नहीं गिना गया। अपने देश के दस्तावेज चोरी करके रूसियों को बेचते हुए सरकारी अफसर पकड़े गए...हजारों कम्युनिस्ट जासूस पकड़े गए...इतिहास में इस प्रकरण की चर्चा कहीं नहीं होती। उनके देशद्रोह के सामने निक्सन का अपराध क्या था? कि उसने उन्हें रोकने के लिए कुछ रास्ते अपनाए जो कन्वेंशनल नहीं थे और वह इतिहास का खलनायक बन गया।

आपको भारत में भी मीडिया, सरकारी तंत्र और ज्यूडिशरी का यह गठजोड़ दिखाई देता है जो हमेशा देश हित के विरुद्ध काम करता है? मैं हमेशा कहता हूँ, भारत में वामपंथ की हरकतों को समझने के लिए उनके उद्‌गम को देखिये। अमेरिकी वामपंथ ही वह उद्‌गम है जहाँ से वामपंथ का यह गंदा नाला बहता है और भारतीय राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को गन्दा कर रहा है।

7: जिमक्रो की भारत यात्रा

अमेरिका में अश्वेत अधिकारों का आंदोलन सिविल राइट्स मूवमेंट कहलाता है। वामपंथ के संदर्भ में इसकी चर्चा करना इस आंदोलन के साथ न्याय नहीं होगा। पर इसके कुछ वामपंथी सूत्र हैं और उससे भी महत्वपूर्ण है कि भारत में वर्तमान में होने वाली राजनीतिक सामाजिक गतिविधियों में इस सिविल राइट्स आंदोलन की रणनीतियों की प्रतिछवि देखी जा सकती है। पर उसके पहले आपको अमेरिका में अश्वेत अधिकारों की लड़ाई का इतिहास देखना पड़ेगा। 1864 में अमेरिका में गृह युद्ध के बाद अमेरिका से दासता समाप्त कर दी गई। पर यह अश्वेतों पर अत्याचारों का अंत हो ऐसा नहीं था।

उसके बाद भी अमेरिका में अनेक ऐसे कानून बनाये गए जिससे अमेरिकी समाज में अन्याय और भेद भाव का प्रभुत्व बना रहा। इनका नूनों को 'जिमक्रो' कानून कहा गया। 'जिमक्रो' कोई व्यक्ति नहीं था, यह अश्वेतों के प्रति एक अनादर का शब्द था। इन कानूनों के अनुसार अमेरिकी समाज में श्वेत और अश्वेत अलग–अलग रखे गए। वे अलग–अलग बसों और ट्रेनों में चलते थे। श्वेतों के रेस्टोरेंट में अश्वेत प्रवेश नहीं कर सकते थे। एमन्शिपेशन लॉ के तहत एक अश्वेत को सिद्ध करना होता था कि वह रोजगार में है, अन्यथा उसे जेल या लेबर कैम्प्स में डाला जा सकता था। उनके वोटिंग के अधिकार सीमित थे। 1969 तक इंटर–रेसियल शादियाँ गैर कानूनी थीं। पर बात इतने तक नहीं थी। समाज में व्यवहार में जो भेद भाव था, वह इन कानूनी भेद भाव तक सीमित नहीं था। अमेरिका में, खासतौर से दक्षिणी राज्यों में स्थिति विकट थी। किसी श्वेत व्यक्ति को किसी अश्वेत व्यक्ति का व्यवहार अगर पर्याप्त सम्मान जनक नहीं लगता था तो इसके परिणाम कुछ भी हो सकते थे। अगर किसी अश्वेत व्यक्ति पर किसी अपराध का आरोप लग जाये तो दंड का निर्धारण आम सहमति से होता था। न्यायिक प्रक्रिया से ही हो यह आवश्यक नहीं था। अगर पब्लिक को न्यायिक प्रक्रिया से निर्धारित न्याय पसंद नहीं आये तो यह न्याय भीड़ कर देती

थी। ऐसी हजारों घटनाएँ हैं जिसमें उत्तेजित श्वेत भीड़ने किसी अश्वेत आरोपी को पकड़कर उसे मारा पीटा, नाक कान काट लिए, आँखें फोड़ दीं और फाँसी देदी, जिंदा जला दिया। अगर आरोपी जेल में बंद हो तो भीड़ ने उसे जेल से निकाल कर मार डाला। उसके बाद उस भीड़ ने मृत व्यक्ति के साथ गर्व से फोटो निकलवाई, और ऐसे फोटो ग्राफ्स उस समय के अमेरिकी अखबारों में मजे से छपा करते थे। ऐसी घटनाओं को 'लींचिंग सक्सेस' भी बताया जाता था।

अखबारों में छपे उन फोटोग्राफ्स के बावजूद किसी भी श्वेत व्यक्ति को ऐसी घटनाओं के लिए सजा हुई हो ऐसा नहीं है।

1955 में मिसिसिपी में ऐसी एक घटना हुई जिसने अमेरिका को झकझोर दिया। एक 14 साल का अश्वेत लड़का, शिकागो निवासी एमेट टिल अपने किसी रिश्तेदार से मिलने मिसिसिपी गया। वहाँ वह एक ग्रॉसरी स्टोर में गया जहाँ स्टोर की 21 वर्षीया मालकिन कैरोलिन ब्रायंट को उसका व्यवहार पसंद नहीं आया। उसने एमेट पर उस पर सीटी मारने और छेड़छाड़ करने का आरोप लगाया। एमेट पर मुकदमा चला उस महिला ने एमेट पर आरोप लगाया कि उसने उसकी कमर पर हाथ डाला और अश्लील बातें कहीं। हालाँकि 2008 में दिए गए एक इंटरव्यू में उसने माना कि यह सच नहीं था। पर भीड़ ने न्यायिक प्रक्रिया का इंतजार नहीं किया उस महिला के पति और भाई ने एक भीड़ के साथ एक रात उस लड़के को उसके दादा के घर से निकालकर मारा पीटा, क्षत-विक्षत किया और फिर गोली मार दी और लाश को नदी में फेंक दिया। उसी वर्ष एक श्वेत जूरी ने दोनों व्यक्तियों को सभी आरोपों से अपराध मुक्त घोषित किया।

एमेट का शव शिकागो लाया गया, वहाँ उसकी माँ ने अपने बेटे की शव यात्रा खुले कास्केट में निकाली जिससे कि दुनिया देख सके कि उस 14 वर्ष के बच्चे के साथ क्या किया गया। इस शव यात्रा में हजारों लोग जुटे और इस घटना ने अमेरिकी सिविल राइट्स आंदोलन को हवा दी।

आज भी अमेरिकी इतिहास और जनस्मृति ने एमेट टिल को जीवित रखा है। वहाँ

एक एमेट टिल में मोरियल कमीशन बनाया गया है। मिसिसिपी में 51 ऐसे स्थान हैं जो एमेट टिल के स्मारक स्थलों के रूप में पहचाने गए।

भीषण सामाजिक विषमता, अत्याचारों और अन्याय की पृष्ठ भूमि में अमेरिका में 1950 और 60 के दशक में सिविल राइट्स मूवमेंट की शुरुआत हुई। इसके नेता बनकर उभरे डॉ. मार्टिन लूथर किंग। उनके नेतृत्व में लोगों ने विशाल रैलियाँ निकालीं, फ्रीडम राइड्स में भाग लिया, बसों का सामूहिक बहिष्कार किया। ऐसा नहीं है की इसमें सिर्फ अश्वेत शामिल थे, इन घटनाओं ने पूरे अमेरिका के मानस को जगा दिया और बड़ी संख्या में श्वेत जनसंख्या ने भी इस आंदोलन का समर्थन किया, डॉ. मार्टिन लूथर ने पूरी तरह से शांतिपूर्ण और द्वेषरहित आंदोलन का आह्वान किया और उन्हें विश्व ने अमेरिकी गाँधी की संज्ञा दी। 1964 में उनकी हत्या हो गयी और उसी वर्ष सिविल राइट्स एक्ट के द्वारा लिंडन जॉनसन की सरकार ने अमेरिका में सेग्रीगेशन और भेदभाव को समाप्त करने की घोषणा कर दी अगले कुछ वर्षों में तेजी से कई ऐसे कानून बने जिसने 'जिमक्रो' को इतिहास की चीज बना दिया।

लेकिन इतने बड़े अन्याय की पृष्ठ भूमि हो, उसके लिए आंदोलन हो और वामपंथी उसका फायदा उठाने से चूक जाएँ और अपनी वर्ग संघर्ष की प्रयोगशाला ना लगाएँ यह हो नहीं सकता। बड़ी संख्या में कम्युनिष्टों ने इस आंदोलन में घुस पैठ कर ली। यह आंदोलन देखते-देखते हिंसक प्रदर्शनों में बदल गया। लाखों की भीड़ सड़क पर विरोध प्रदर्शन करने के लिए उतरती, लेकिन उसमें किसी एक कोने से कोई हिंसा और आगजनी की चिंगारी छोड़ देता और एक अहिंसक गाँधीवादी प्रदर्शन रेसिस्म और नस्ली दंगों में बदल जाता। फिर पुलिस हिंसा को कंट्रोल करने के लिए गोलियाँ चलाती, और लोग मरते। इससे आने वाले और अधिक उग्र प्रदर्शन और दंगों के लिए और मसाला मिलता। आपको पिछले चार सालों में भारत में हुए अनेक प्रदर्शनों में, जाट आंदोलन, गुर्जर आंदोलन, पटेल आंदोलन, सोनपेड़ की घटना के बाद हुए दलित प्रदर्शन

जैसे अनेक आंदोलनों में इस रणनीति की झलक दिखाई देगी। यह अनायास नहीं है... यह उन्हीं की स्क्रिप्ट की नकल है।

अमेरिका में सिविल राइट्स आंदोलन का ही एक और बड़ा नाम है मैल्कॉम एक्स। बीस वर्ष की उम्र में मैल्कॉम लिटिल नाम का एक अश्वेत व्यक्ति चोरी के आरोप में जेल गया। वहाँ उसकी मुलाकात अन्य अपराधियों से हुई और उसी में से एक के प्रभाव में आकर वह कम्युनिस्ट बन गया। उसने अपना नाम बदलकर मैल्कॉम एक्स रख लिया। उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया और अपने आपको शाहबाज मालिक भी कहने लगा। उन दिनों अमेरिका में डेट्रॉइट में नेशंस ऑफ इस्लाम (NOI) नाम की एक संस्था थी, जो अश्वेत अमेरिकनों को इस्लाम में कन्वर्ट करने का काम करती थी। मैल्कॉम एक्स इस संस्था का एक प्रमुख सदस्य बन गया। उसने इस संस्था का खूब विस्तार किया और मुक्के बाज क्लासिय सक्ले (मुहम्मदअली) और उपन्यास 'रूट्स' के लेखक अलेक्स हेली भी उसके प्रभाव में मुस्लिम बने।

मैल्कॉम एक्स एक घोषित कम्युनिस्ट था। एक चोर और गैंगस्टर कैदी को जिस तरह मीडिया कवरेज देकर अमेरिका में अश्वेत आंदोलन का चेहरा बनाया गया वह ध्यान देने लायक है। उसे रेडियो और टेलीविजन पर बुलाया गया। दुनिया भर के राज नेता अमेरिका आते तो उससे मिलने जाते, जिसमें इजिप्ट के राष्ट्रपति नासिर और क्यूबा के फिदेल कास्त्रो शामिल थे। वह यूनिवर्सिटी कैंपस में छात्रों के बीच डिबेटिंग करता था और बी.बी.सी. तक उसके डिबेट्स को लाइव प्रसारित करता था। वह नेशंस ऑफ इस्लाम का प्रचारक और मौलवी था। उसकी शिक्षा के चार मुख्य विन्दु थे :

- दुनिया के मूल निवासी अश्वेत हैं
- श्वेत लोग शैतान हैं
- अश्वेत जातियाँ श्वेतों से श्रेष्ठ हैं
- श्वेत जातियों का अंत निकट है

वह अमेरिकी सिविल राइट्स आंदोलन का विरोधी और आलोचक था। उसकी शिकायत थी कि यह आंदोलन अश्वेतों और श्वेतों के बीच की दूरी और विषमता को मिटाने पर केंद्रित है, जब कि वह और अधिक रेसियल संघर्ष और विद्वेष चाहता था। इसके लिए वह डॉ. मार्टिन लूथर का भी विरोधी था और उन्हें गोरों का एजेंट कहता था। हालाँकि उस समय अमेरिका में तेजी से रेसियल कानूनों में सुधार हो रहे थे, पर वह इन सुधारों का समर्थक नहीं था। वह सेग्रीगेशन खत्म करने का विरोधी था और उसने अश्वेत लोगों के 'सेल्फ-डिटर्मिनेशन' यानि उनके लिए अलग देश की माँग की और अश्वेतों को सशस्त्र विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया।

मैल्कॉम एक्स अमेरिका के लिए बड़ा सरदर्द बनकर उभर रहा था तभी उसकी नेशंस ऑफ इस्लाम के अन्य नेता मुहम्मद एलिजा से अनबन हो गयी। वह इस संस्था से अलग हो गया और जैसाकि गैंगस्टर्स के साथ अक्सर होता है, नेशंस ऑफ इस्लाम वालों ने उसकी दिन दहाड़े हत्या कर दी।

आज भारत में आप एक लहर देख रहे हैं जो मूलत: 1960 के अमेरिकी परिदृश्य को रीस्टेज किये जाने की कोशिश है। दलित अधिकारों की माँगों को बिलकुल अमेरिकी सिविल राइट्स आंदोलन की तर्ज पर खड़ा किये जाने का प्रयास है। वही भीड़ जुटाना, वही उन्माद पैदा करना, जातीय हिंसा फैलाना और पुलिस को आक्रामक करवाई करने को मजबूर करना....और अगर आपकी नजर से छूट रहा है तो उनका ग्लोबल स्ट्रेटेजिक अलायन्स भी है, इस्लाम से। तो भीम-मीम की पार्टर्नशिप भी नयी नहीं है।

अमेरिका जिन अपराधों का दोषी रहा है उन्हें भारत पर मढ़ा जा रहा है। भारतीय समाज स्वत: स्फूर्त और स्वप्रेरणा से जिन सामाजिक भूलों का सुधार कर चुका है, उसे समाज पर प्रत्यारोपित करने के लिए नयी और झूठी कृत्रिम कहानियाँ गढ़ी जार ही हैं। और चूँकि स्वतंत्र भारत में कभी 'जिमक्रो' कानून थे नहीं, तो कहानियाँ मैन्युफक्चर की जा रही हैं। लिंचिंग नाम के शब्द को खूब दुहराया जा रहा है, किसी दो चार लोगों के बीच मार पीट की किसी भी घटना को लिंचिंग

का नाम देकर देश–विदेश के मीडिया में खूब फैलाया जा रहा है।

अमेरिका अपने रेसिस्ट भूतकाल को पीछे छोड़ आया है। आज अमेरिका में अश्वेत किसी भी अफ्रीकन देश से ज्यादा समानता और अधिकार के साथ रहते हैं। पर बीच–बीच में ऐसी कहानियाँ उछाली जाती रही हैं जिसे आप रेसिज्म से जोड़कर दिखा सकतेहैं।

इस वर्ष फिलडेल्फिआ में स्टार बक्स कॉफी शॉप में ऐसी ही एक घटना हुई। एक दूकान में दो व्यक्ति घुसे और वाशरूम इस्तेमाल करने की अनुमति माँगी। स्टाफ ने कहा कि यह सुविधा सिर्फ उसके कस्टमर्स के लिए है, इसलिए उन्हें कुछ खरीदना होगा। इस पर वे दोनों लड़ने लगे। झगड़ा बढ़ गया और स्टाफ ने पुलिस बुला ली। वे दोनों पुलिस से भी लड़ने लगे, तो पुलिस उन्हें अरेस्ट करके ले गयी। अब खास बात यह है कि वे दोनों व्यक्ति अश्वेत थे तो इस घटना ने रेसिज्म की शक्ल ले ली। इतनी–सी बात मीडिया तक पहुँच गयी, पूरी दुनिया में इसकी खबरें छपीं और स्टारबक्स को माफी माँगनी पड़ी, हर्जाना देना पड़ा और कंपनी ने एक दिन के लिए पूरी दुनिया में अपने सारे स्टोर्स बंद रखे और सारे स्टाफ कोरेसियल इक्वलिटी ट्रेनिंग पर भेजा गया।

आज आप भारत में इनटॉलेरेंस–कथा सुनते हैं...हर तरफ इनटॉलेरेंस का एपिडेमिक फैला है। क्योंकि यह मोदी का भारत है। तो उधर ट्रम्प के अमेरिका में भी यही कहानी चल रही है। लोगों को बताया जा रहा है कि कैसे समाज में ट्रम्प के आने से रेसिज्म बढ़ रहा है। लोगों को ट्रम्प को वोट देने के लिए शर्मिंदा किया जा रहा है।

आप कोई भी बॉलीवुड फिल्म देखते हैं और आपको कहानी लैला–मजनू की कहानी से थोड़ी भी अलग लगती है तो आप समझ जाते हैं कि यह किसी ना किसी हॉलीवुड फिल्म की नकल है, तो भारत का वर्तमान वामपंथी परिदृश्य भी कोई ओरिजिनल स्क्रिप्ट नहीं है, 1960 की हिट अमेरिकन स्क्रिप्ट 'सिविल राइट्स' की चोरी भर है।

8. वामपंथ : पीड़ा का व्यवसाय

कुछ दिनों पहले की बात है। एक अमेरिकन लड़की लंच में नारीवादी रोना रो रही थी। मैंने पूछा – तुम्हें नारी होने से क्या समस्या हो गई? तुम तो अमेरिकन स्वतंत्र नारी हो...तुम कोई सूडान, सीरिया, अफगानिस्तान की तो नहीं हो...तुम्हें क्या घट गया जो रोए जा रही हो?

उसने कहा – तुम औरत नहीं हो, तुम्हें नहीं पता औरत होने से कितना स्ट्रगल करना होता है...

– क्या करना होता है? क्या तुम्हें भी माथे पर पानी का घड़ा भर कर लाना होता है स्कूल जाने से पहले...या स्कूल के बाद दो घरों का बर्तन माँजती थी? या स्कूल में मास्टर तुम्हें लड़की होने की वजह से कम नंबर देता था? या तुम्हें मेडिकल में एडमिशन के लिए लड़कों से ज्यादा नंबर लाने पड़े? या तुम्हें कोई जॉब लड़की होने की वजह से नहीं मिला? यह रोना क्यों? तुम्हारी नानी अगर 1960 में यह शिकायत करती थी तो समझ में आता था...आज तुम किस हक से शिकायत कर रही हो? कौन–सा अन्याय अत्याचार हो रहा है तुम्हारे साथ?

– तुम्हें नहीं पता...दिखाई नहीं देता...पर होता है...

यह एक वामपंथी प्रचार है – माइक्रो–एग्रेशन....वो अन्याय जो दिखाई नहीं देता, पर होता है। यानि आप किसी तरह की विक्टिम–आइडेंटिटी को सब्सक्राइब करते हैं। आप किसी विक्टिम ग्रुप के सदस्य हैं...महिला हैं, अल्पसंख्यक हैं, अश्वेत हैं, समलैंगिक हैं...तो आपके साथ कोई ना कोई अन्याय अवश्य हो रहा है। चाहे आपको पता चले या नहीं, दिखाई दे या नहीं। एक सर्वव्यापी सूक्ष्म अन्याय है। आप उसको कभी दूर नहीं कर सकते। वह और कहीं नहीं तो किसी के मन में कहीं छुपा होगा और उसकी कल्पना करके आप माइक्रो–एग्रेस्ड होते रह सकते हैं।

अन्याय के प्रतिकार का यह स्टैंड वामपंथियों का बहुत ही सशक्त शस्त्र है।

समाज में अन्याय को खोजना, फिर उसे अन्यायी और पीड़ित के ग्रुप्स में बाँटना.. संगठित और संस्थागत अन्याय का नैरेटिव खड़ा करना...फिर पीड़ित व्यक्ति के लिए आवाज उठाने के नाम पर तथाकथित पीड़ित समाज का झंडा खड़ा करना और समाज में सतत संघर्ष का माहौल बनाये रखना...यही वामपंथी रणनीति है।

भारत के संदर्भ में यह बहुत ही सफल नैरेटिव रहा है। उसमें भी अन्याय की एक अपरिभाषित हायरार्की है। अपरिभाषित इसलिए कि उसमें सुविधानुसार संशोधन किया जा सके। उनके नैरेटिव में पहले अमीर गरीब पर अत्याचार करता था... अब यह ज्यादा जटिल है। अब हिन्दू मुसलमान पर अत्याचार करता है, सवर्ण दलित पर, पुरुष स्त्री पर...

अब सोचें...अमीर मुसलमान और गरीब हिन्दू में कौन किस पर अत्याचार करने में सक्षम है? दलित और मुसलमान में अन्यायी और पीड़ित की भूमिकाएँ किसकी होंगी? मुसलमान पुरुष और सवर्ण महिला में अन्यायी और पीड़ित के बीच क्या समीकरण होगा?

कोई भी समीकरण हो...समाज में कहीं ना कहीं, कोई ना कोई अन्याय हो ही रहा होगा...और हर स्थिति में ये कोई ना कोई समीकरण निकाल कर एक अन्यायी वर्ग और एक एक पीड़ित वर्ग ढूँढ़ ही लेते हैं और अगर कहीं अन्याय आज नहीं हो रहा हो तो तीन सौ साल पहले हुआ होगा...कहीं नहीं तो किसी के मन में किसी पूर्वाग्रह के रूप में छुपा होगा...और अगर यह कहानी ठीक-ठाक नहीं बिक रही हो तो उन्हीं के बीच से एक व्यक्ति ऐसा एक काण्ड कर देगा जिसे उनके मनपसंद अन्याय के नैरेटिव में फिट किया जा सके। एक आध सवर्ण-पुरुष-बहुसंख्यक-सम्पन्न अन्यायी तो ये स्पॉन्सर कर ही सकते हैं।

वामपंथियों को पहचानने का यह सबसे सटीक और स्पष्ट तरीका है...हर सामाजिक संपर्क में अत्याचारी और पीड़ित का समीकरण खोजता और बनाता हुआ व्यक्ति वामपंथी है...उसे सीपीआई-सीपीएम में खोजना बन्द कर दें..

9 : अमीरों द्वारा गरीबी की मार्केटिंग

किसी भी व्यक्ति की पहचान इससे नहीं होती कि वह कितने पैसे कमाता है, कितने बड़े घर में रहता है, किस कार से चलता है...किसी देश की तरक्की का मानक यह नहीं है कि वहाँ लोग कैसे घरों में रहते हैं, कितने लोग कारों से चलते हैं, कैसा खाते और पहनते हैं...देश और समाज की पहचान वहाँ के समाज में स्थापित उच्च मानवीय मूल्यों से होती है....etc-etc...

यह कौन कहेगा? यकीन मानिए, वही कहेगा जिसके पास बड़ा घर है, महँगी कार है...खाने पहनने को अफरात है...

और सुनेगा कौन? वही सुनेगा जिसके पास घर नहीं है, कार तो छोड़िए साईकल तक बेच के जिसने ताड़ी पी डाली है, और जिसके पास तरक्की का, समृद्धि का कोई सपना नहीं है।

जिसने मेहनत से एक छोटा-सा घर खरीदा है वह उससे बड़े घर का सपना रखता है, जिसने इंस्टालमेंट पर स्कूटर खरीदा है उसके लिए कार खरीदना बड़ी उपलब्धि होगी। वह मेहनत करेगा ही और सफलता पर गर्व भी करेगा...और उसकी उपलब्धि आपके उच्च मानवीय मूल्यों से निम्न भी नहीं दिखाई देगी...

वामपंथ और समाजवाद के जितने सितारे हैं, उन सबकी पृष्ठभूमि देखिये...सभी बड़े और पैसे वाले खानदानों की उपज हैं, या फिर किसी पैसे वाले के परजीवी। और किसी ने भी अपनी व्यक्तिगत संपत्ति किसी भी गरीब को नहीं दी। एंगेल्स बहुत ही पैसे वाले खानदान का था, मार्क्स उसके पैसे पर जिंदगी भर ऐश करता रहा। लेनिन रूस के बहुत ही प्रतिष्ठित राजनयिक खानदान का वारिस था और सत्ता हड़पने की महत्वाकांक्षा में उसका भाई मारा गया था। माओ एक बड़े जमींदार परिवार का था और जिंदगी में उसने कभी शारीरिक श्रम नहीं किया था। अमेरिका में बैठे वामपंथ के सारे झंडा बरदार...होर्खं हाइमर, एडोर्नो, मार्क्यूस.... सभी बेहद पैसे वाले यहूदी थे। इन्होंने जिंदगी में एक दिन के लिए भी हाथ से

कोई काम नहीं किया, और जर्मनी में आग लगा कर हाथ जलने से पहले भागकर अमेरिका में बस गए। ऐसे ही एक बड़े बाप के निठल्ले बेटे फेलिक्स वील ने अपने बाप के पैसे से उस फ्रैंकफर्ट स्कूल की स्थापना का खर्च उठाया जहाँ से आज भी पूरी दुनिया में इस वामपंथ का गंदा नाला बहता है।

अमेरिकी इतिहास में जितने भी समाजवादी किस्म के राजनेता हुए, सभी बेहद पैसे वाले परिवारों के थे...अमेरिकी समाजवाद के सितारे रूजवेल्ट, जिनका न्यू-डील अमेरिकी अर्थव्यवस्था को आधी सदी तक जकड़े रहा और जिससे बाहर उसे रेगन ने 80 के दशक में निकाला, वह तो राष्ट्रपतियों के परिवार से ही था। अमेरिकी लिबरलों के पोस्टर-बॉय कैनेडी का परिवार अमेरिका के सबसे अमीर परिवारों में से एक था और उसके बाप जोसेफ कैनेडी का कहना था कि एक सीनेटर तो मैं अपने ड्राइवर को भी बना सकता हूँ...

वहीं दूसरी तरफ जितने दक्षिणपंथी नेता हुए...पूँजीपतियों के कुख्यात एजेंट... सभी गरीब मामूली मेहनती परिवारों से हुए। रेगन का बाप एक अल्कोहॉलिक था और उसने अपनी पढ़ाई एक स्पोर्ट्स कमेंटेटर की पार्ट टाइम नौकरी करते हुए की थी। निक्सन एक छोटे दुकानदार का बेटा था...मार्गरेट थैचर भी...और भारत में चाय-पकौड़े की कहानी तो सभी जान ही रहे हैं...

समाजवाद, समानता, उच्चतर मानवीय मूल्य...ये सब भरे पेट के शगल हैं... सामान्य मेहनती आदमी समानता नहीं, सफलता खोजता है और अपनी उपलब्धि को अपने बच्चों तक पहुँचाने का और उन्हें जीवन में एक अच्छी शुरुआत देने का हक भी रखता है...मेहनती आदमी से छीन कर निकम्मे को देने का वादा करके सत्ता पर कब्जा करने की मंशा का नाम है समाजवाद...!

10: फ्रैंकफर्ट स्कूल : वामपंथ का विष वृक्ष

फ्रैंकफर्ट स्कूल को समझना सबसे जरूरी है क्योंकि यही आज का वामपंथ है। पूरी दुनिया में और भारत में भी जितनी भी विघटनकारी गतिविधियाँ हो रही हैं, सबके तार इसी एक संस्था से जुड़े हैं और सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इस नाम की कोई संस्था कहीं भी औपचारिक रूप से है ही नहीं।

जब रूस में कम्युनिस्ट क्रांति हुई और एक कम्युनिस्ट सरकार बन गयी तो पूरी दुनिया के वामपंथी विचारकों को अपेक्षा थी कि अब यह क्रांति यूरोप के अन्य देशों में भी फैलेगी। लेकिन ऐसा होता नहीं दिखा। कम्युनिज्म का जो भी असर यूरोप में फैला वह जबरदस्ती रूसी सेनाओं के भरोसे फैला लेकिन किसी भी समाज ने कम्युनिज्म को स्वीकृति नहीं दी।

कुछ ऐसा दिखाई देने लगा था कि कम्युनिज्म जब एक बार सत्ता में आ जाता है तो वह जनता का विश्वास खोने लगता है। फिर उसे सिर्फ जबरदस्ती ताकत के भरोसे ही कम्युनिस्ट बनाये रखा जा सकता है। रूस में तो धोखे से सत्ता पर कब्जा हो गया था, पर दूसरे देशों में वैसा समर्थन मिलता दिखाई नहीं दिया। अन्य देशों के मजदूरों ने रूसी क्रांति के बजाय अपने देश की राष्ट्रवादी शक्तियों का साथ देना पसंद किया। तभी इन वामपंथी विचारकों ने यह पहचान लिया कि मार्क्स के सिद्धांत अपूर्ण, अधूरे और एक व्यापक क्रांति के लिए अपर्याप्त हैं। लोगों की आस्थायें अपने राष्ट्र और स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों के साथ हैं। अमीर और गरीब, मालिक और मजदूर के बीच का संघर्ष चिरस्थायी नहीं है। दोनों एक ही राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक सूत्र से बँधे हैं। समाज का गरीब तबका मूलतः अमीरों से संघर्ष करने में नहीं, बल्कि अपनी गरीबी दूर करने में ज्यादा रुचि लेता है। तब उन्होंने समाज में नए-नए संघर्षों को तलाशने और सामाजिक वर्ग-संघर्षों की नयी परिभाषाएँ गढ़ने का काम शुरू किया।

इन लोगों ने रणनीति बदली। इन्होने समझा कि अपनी विचारधारा को स्थापित

करने से पहले इन्हें समाज के स्थापित सांस्कृतिक मानदंड बदलने होंगे। राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट करना होगा। सिर्फ पूँजीवाद को निशाना बनाने से बात नहीं बनेगी, सभी सांस्कृतिक मूल्यों को निशाना बनाना होगा। समाज, परिवार, नैतिकता, धर्म हर बात जो समाज को जोड़ती है उसे कमजोर करना होगा। समाज में सिर्फ एक अमीर और गरीब का संघर्ष समाज को तोड़ने के लिए काफी नहीं है। जितने भी नए संघर्ष निर्मित किये जा सकें, किये जाएँ। यानि समाज में बाहर से एक क्रांति थोपने के बजाय भीतर से समाज को कमजोर करके उस पर कब्जा करने की नीति रची गयी। राजनीती के बजाय शिक्षा, कला, साहित्य और पत्रकारिता पर कब्जा किये जाने की रणनीति बनाई गयी। यह संयोग नहीं है कि कला, साहित्य, सिनेमा और मीडिया में आज भी आपको वामपंथी प्रभुत्व दिखाई देता है।

जर्मनी में इन्हीं कुछ वामपंथी विचारकों ने एक इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च की स्थापना की। वहाँ समाज को तोड़ने के लिए नए-नए नैरेटिव गढ़ने का काम शुरू हुआ। खास बात यह है कि गरीबों के नाम पर स्थापित इस विचारधारा के सभी पुरोधा बेहद अमीर यहूदी परिवारों से थे। यह इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च ही फ्रैंकफर्ट स्कूल के नाम से जाना गया।

उन्ही दिनों इटली में मुसोलिनी का एकक्षत्र शासन था, और जर्मनी में हिटलर का उदय हो रहा था। हिटलर की हिट-लिस्ट में ये वामपंथी सबसे ऊपर थे। पर इन्हें भी मालूम था कि आगे क्या होने वाला है। तो जर्मनी को आग में झोंक कर फ्रैंकफर्ट स्कूल के ये बुद्धिजीवी सबसे पहले अमेरिका भाग लिए।

अमेरिका में तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इन सभी जर्मन यहूदी दार्शनिकों, विद्वानों, वामपंथियों को सर आँखों पर बिठाया। उन सभी का झुण्ड एक साथ कोलंबिया यूनिवर्सिटी में जम गया। इस दार्शनिक, राजनीतिक सोच को आज भी अमेरिका में फ्रैंकफर्ट स्कूल के नाम से जाना जाता है, हालाँकि इस नाम का कोई स्कूल वास्तविक रूप से कहीं स्थापित नहीं है।

इनके इस स्वागत की दो वजहें थीं। पहला, ये सभी हिटलर विरोधी थे, और आसन्न युद्ध की स्थिति में अमेरिका इन्हें उपयोगी गिन रहा था। दूसरा, राष्ट्रपति रूजवेल्ट की समाजवादी प्रवृतियाँ किसी से छुपी नहीं थीं।

पर ऐसा नहीं है कि जर्मनी से जान बचा कर भागे और अमेरिका में शरण पाए इन वामियों की अमेरिका के प्रति कोई कृतज्ञता थी। इन्हें तत्कालीन पारम्परिक अमेरिकी समाज व्यवस्था में गलतियाँ ही गलतियाँ, खामियाँ ही खामियाँ दिखाई देती थीं। इन्हें अमेरिका साम्राज्यवादी पूँजीवादी वर्ग का प्रतिनिधि जान पड़ता था। तो अपनी क्रांति के स्वप्न को मूर्त रूप देने के लिए इन्होने अमेरिकी समाज को नष्ट और विकृत करने की ठानी। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इन वामपंथियों की हमेशा गहरी पकड़ बनी रही जैसी आज आप भारत में देशद्रोह के गढ़ों, जेएनयू वगैरह में देखते हो। विश्वविद्यालयों में यह वामपंथी वर्चस्व पूरे शीतयुद्ध के दौरान बना रहा, और अमेरिकी समाज में उपलब्ध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का फायदा उठा कर फलता-फूलता रहा। सच तो यह है की 1980-90 के दशक के आते-आते इनकी जड़ें अमेरिकी मीडिया, सिनेमा, शिक्षा पर इतनी गहरी हो चुकी थीं कि सोवियत रूस का पतन वामपंथी इतिहास की एक मामूली-सी घटना ही है। 1990 में रूस के टूटने तक वैश्विक वर्चस्व के उनके लक्ष्य में रूस एक बाधा ही रह गया था।

सांस्कृतिक मार्क्सवाद के फ्रैंकफर्ट स्कूल को समझने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है इसका 11 पॉइन्ट प्लान

1. रेसिज्म के आरोपों की कल्पना।
2. लगातार बदलाव और भ्रम की स्थिति बनाये रखना।
3. बच्चों को सेक्स और समलैंगिकता का पाठ पढ़ाना।
4. स्कूलों और शिक्षकों की अथॉरिटी को खत्म करना।

5. शरणार्थियों, घुसपैठियों और अप्रवासियों को बढ़ावा देकर सामाजिक संरचना और पहचान को खत्म करना।

6. नशे को बढ़ावा और समर्थन।

7. धर्म-स्थलों को खाली करना - लोगों को धर्म से विमुख करना।

8. अन्यायपूर्ण और अविश्वसनीय न्याय-व्यवस्था खड़ी करना।

9. सरकारी मदद पर लोगों को आश्रित बनाने को बढ़ावा।

10. मीडिया पर नियंत्रण।

11. परिवार की व्यवस्था को नष्ट करना।

वामपंथियों को पहचानना सबसे महत्वपूर्ण कदम है। आज के वामपंथी 70 के वामपंथियों की तरह दाढ़ी बढ़ा कर, फटा पजामा पहन के खादी का झोला लेकर चलने वाले घोषित वामपंथी नहीं हैं। इनकी ताकत है कि ये पहचान में नहीं आते, इसलिए इनका यह 11 सूत्री प्लान महत्वपूर्ण है...समाज में जहाँ कहीं भी कोई भी इन 11 में से किसी भी सूत्र को बढ़ावा दे रहा हो वह वामपंथी है।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण है सूत्र नंबर 2 ... लगातार बदलाव और भ्रम...आज का वामपंथी मार्क्स और दास कैपिटल और कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो से नहीं बँधा है। वह किसी भी एक सिद्धांत से नहीं बँधा है। वह अपने सिद्धांतों और रणनीति में लगातार बदलाव करने को तत्पर है।

ऐसे में वामपंथ को उनके सिद्धांतों और रणनीति से नहीं पहचाना जा सकता... उसे सिर्फ उसकी नीयत से पहचाना जा सकता है।

एक स्टीरियोटाइप वामपंथी की नीयत का उदाहरण दूँगा। अगर बस में दो लोगों के बीच झगड़ा हो जाये, और उनमें एक 6 फीट 4 इंच का हो और दूसरा 5 फीट 3 इंच का तो नतीजा क्या होगा? लंबा आदमी नाटे की ठुकाई कर देगा और सीट ले लेगा।

अब यहाँ से एक वामपंथी की भूमिका शुरू होती है। एक वामपंथी इस घटना को इस्तेमाल करके यह नैरेटिव बनाएगा कि दुनिया में लंबे लोग दुष्ट और अत्याचारी होते हैं और नाटे लोग बेचारे पीड़ित होते हैं। दुनिया में हर कोई किसी ना किसी से लंबा और किसी ना किसी से नाटा है, दो लोगों को छोड़ कर...पर यह कथन उनके नैरेटिव को सूट नहीं करता। पीड़ित नाटी मानवता का झंडा खड़ा करके यह वामपंथी नाटाधिकार एक्टिविस्ट हजार नाटे लोगों की भीड़ लेकर किसी लंबे आदमी के घर को घेर कर लूटपाट मचा देगा...बाकी सारे लंबे लोग लंबे होने के अपराध-बोध से ग्रस्त चुपचाप बैठे रहेंगे। उस लंबे आदमी की एक्स्ट्रा लार्ज पैंट और जैकेट छीन कर नाटे लोगों में बाँट देगा और उन्हें समझायेगा कि दुनिया में लंबे लोगों ने नाटे लोगों के हिस्से का कपड़ा लेकर ये लंबी-लंबी पैंटें सिलवाई हैं, इसीलिए कपड़े की इतनी कमी है और कपड़ा इतना महँगा है...और उसकी सोने की चेन और घड़ी चुपचाप अपने पास रख लेगा...

यही सोने की चेन और घड़ी वामपंथी की असली नीयत है। उसे इसी से पहचानें। उनकी नीयत है सत्ता पर कब्जा। नाटे आदमी को बस में खिड़की की सीट मिलनी चाहिए...यह उसका मूल नाटाधिकार है...यह नारेबाजी है। नजर उनकी है उस सोने की चेन और घड़ी पर जो उस आदमी के पास है जो उस बस में चल भी नहीं रहा..

11 : वामपंथ की बाइबिल : रूल्स फॉर रेडिकल्स

1950-60 के दशक में अमेरिकी वामपंथ में एक बड़ा नाम था, सॉल अलिन्स्की। अलिन्स्की कार्ल मार्क्स जैसा सिद्धांतवादी नहीं था। उसने वामपंथ को कोई सिद्धांत नहीं दिया, पर उसे उसकी तकनीक के लिए जाना जाता है।

वामपंथियों के आंदोलन और संघर्ष की तकनीक को 50 और 60 के दशक में अलिन्स्की ने अपने प्रयोगों और अनुभवों से निखारा। 1971 में उसने अपने सारे अनुभवों का सार एक पुस्तक में लिखा जो आज भी वामपंथी रणनीति की बाइबिल गिनी जाती है - रूल्स फॉर रेडिकल्स।

वामपंथ की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो या दास कैपिटल नहीं है, वह है रूल्स फॉर रेडिकल्स। दुनिया के 2% वामियों ने भी कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो नहीं पढ़ी होगी, लेकिन रूल्स फॉर रेडिकल्स हर वामपंथी आंदोलन और रणनीति की रीढ़ है। अलिन्स्की का वाम आंदोलन में महत्व आप इस बात से समझ सकते हैं कि राष्ट्रपति बराक ओबामा और राष्ट्रपति पद की पिछली उम्मीदवार हिलेरी क्लिंटन एक समय अलिन्स्की के शिष्य रह चुके हैं।

अलिन्स्की के 13 रूल्स हैं। ये कोई नैतिक सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि ये शुद्ध रणनीति है. और यह अमेरिका तक सीमित नहीं है। आप भी इन्हें देख कर समझिये कि आपको इनमें से कितने रूल्स आज भारत के वामी उपद्रवियों द्वारा प्रयोग किये जाते दिखते हैं।

रूल नंबर 1. 'शक्ति सिर्फ वह नहीं है, जो आपके पास है। शक्ति वह भी है जो आपका शत्रु समझता है कि आपके पास है।'

आप देखते हैं कि ये वामी कहीं भी चुनाव नहीं जीतते। जनता इनके साथ कहीं नहीं है। फिर भी ये यह भ्रम बनाये रखते हैं कि जनता इनके साथ है और ये जो

भी कर रहे हैं उसे अपार समर्थन प्राप्त है।

रूल नंबर 2. 'कभी भी अपने Expertise के बाहर जाकर कुछ मत करो।'

आप पाएँगे कि वामपंथी अपने कुछ सीमित मुद्दों पर, सीमित भाषा में बात करते हैं।

रूल नंबर 3. 'जब भी संभव हो, अपने शत्रु को उसके (Expertise) की सीमा से बाहर लाओ। हमेशा चिंता, अनिश्चितता और असुरक्षा बनाये रखने के प्रयास करो।

वामपंथी आपको हमेशा अपने मुद्दों पर खींच कर लाएँगे। अगर आप उनके मुद्दे पर आ गए तो यहीं उनकी जीत होती है। इसलिए मैं कहता हूँ, किसी भी वामपंथी को किसी भी बहस में उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर मत दो - यह आपको खींच कर अपने मुद्दे पर लाने की उनकी चाल होती है। अगर आप इसे समझेंगे तो आप उन्हें उनके मुद्दों पर हराने का लालच नहीं करेंगे।

रूल नंबर 4. 'विपक्षी को उसके अपने नियमों से चलने के लिए बाध्य करो।'

अगर कोई हर पत्र का उत्तर देने का नियम मानता है तो उसे 30000 पत्र भेजो। क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने हर नियम को व्यवहारतः मान नहीं सकता। तो जब आप यह सिद्ध करते हो कि वह अपने बनाये नियम ही नहीं मानता तो आप मूलतः उसकी प्रमाणिकता और विश्वसनीयता को नुकसान पहुँचाते हो।

आप पाएँगे कि वामी हमेशा अच्छे को अच्छा, सहिष्णु को और सहिष्णु होने को बाध्य करते हैं। हिन्दू सहनशील है तो वे आपकी सहनशीलता को उस सीमा तक टेस्ट करेंगे, जब आपकी सहनशीलता समाप्त हो जाये और वे यह कह सकें कि देखिये, असहिष्णुता कितनी बढ़ गई है।

रूल नंबर 5. 'उपहास सबसे बड़ा हथियार है।' इसका कोई जवाब नहीं है, यह आपके विपक्षी को निहत्था कर देता है। व्यक्ति आलोचना का जवाब दे सकता है, उपहास का नहीं।

आप देखते हैं कि वे अपने चिन्हित शत्रु का मजाक बनाते हैं। उस पर व्हाट्सएप्प मैसेज, जोक्स, मीम चलाते हैं। कार्टून और कविताएँ चलती हैं और नेट पर वायरल होती हैं। हालाँकि यह दोधारी तलवार है, क्योंकि आज देश में सबसे बड़ा उपहास का पात्र कोई है तो वह उनका प्यारा पप्पू ही है...

रूल नंबर 6 . 'अच्छी रणनीति वह है जिसे आपके लोग एन्जॉय करें।' ऐसे में वे बढ़चढ़ कर सक्रिय होते हैं, और स्वयं भी नई रणनीति सोचते हैं।

रूल नंबर 7. 'जब एक रणनीति लंबी खिंचती है तो लोगों को बोरियत होती है। पुरानी खबर बनने से बचें।'

रूल नंबर 8. 'हमेशा दबाव बनाये रखें। जैसे ही शत्रु एक प्रहार का जवाब तैयार करे, उस पर दूसरी ओर से हमला करें'।

यह तो आप देखते ही हैं। इस मामले में वामियों की ऊर्जा की दाद देनी होगी। यह खिलौना डूरासेल की बैटरी से चलता है।

आप देखते ही हैं, वामियों का एक शगूफा आता है तो वह थोड़े दिन चलता है, फिर ठंडा पड़ जाता है। यह अनायास नहीं है। यह उनके इसी नियम का पालन है। पहले कुछ दिन देश के हर कोने में बीफ को लेकर हिंसा की खबर चली। फिर क्या हुआ? वह बन्द क्यों हो गया? फिर कुछ दिन चर्चों पर हमले चले। कुछ दिन लगातार बलात्कार की खबरें आती हैं एक के बाद एक। एकाएक दलितों पर हिंसा की बाढ़ आ जाती है। कुछ दिनों पहले एकाएक सवर्णों पर एस सी/ एस टी एक्ट में मुकदमे दायर होने लगते हैं। उनके मुद्दों का सीजन चलता है। जैसे गली की कुतिया एक साथ पाँच-सात बच्चे जनती है और आपको पूरी गली में पिल्ले ही पिल्ले दिखने लगते हैं, वामपंथ की कुतिया भी एक साथ खबरों के पिल्ले जनती है... एक बियान में 5-7...

रूल नंबर 9. 'खतरा अक्सर जितना बड़ा होता है, खतरे का डर उससे ज्यादा बड़ा होता है।'

और यह स्थापित करने में उनका प्रचारतंत्र हमेशा सक्रिय और सफल रहता है।

रूल नंबर 10. 'लगातार दबाव बनाए रखने की प्रक्रिया ही रणनीति का मुख्य बिंदु है। इसी दबाव में शत्रु प्रतिक्रिया देता है और इन्ही प्रतिक्रियाओं से राजनीतिक अवसर निकलते हैं।'

रूल नंबर 11. 'एक नकारात्मक बात को अगर हद से ज्यादा बढ़ावा दिया जाए तो उससे भी सकारात्मक बिंदु उठते हैं और उनका भी लाभ उठाया जा सकता है।' अगर शत्रु आपके विरुद्ध हिंसक हो जाये तो इससे आपको सहानुभूति मिल सकती है।

कोई आश्चर्य नहीं है कि इसी उद्देश्य के लिए वे हिंसा करते हैं और आपको हिंसा के लिए भड़काते हैं।

रूल नंबर 12. 'एक सफल आक्रमण का मूल्य है एक सकारात्मक विकल्प। शत्रु को इस बिंदु पर पॉइंट स्कोर ना करने दें कि आप जिस समस्या की शिकायत कर रहे हों, उसके समाधान के बिना नहीं पकड़े जाएँ।'

इस बिंदु को ध्यान से देखें। हालाँकि अलिन्स्की की इस सलाह को वामपंथियों ने सुना नहीं है, और वो आपको कभी किसी भी समस्या का समाधान देते हुए नहीं मिलेंगे। पर अलिन्स्की ने यह नियम सुझाया है कि यह बात पकड़ में आनी नहीं चाहिए....पर इस नियम में भी इन वामियों की सोच में मूल बिंदु शत्रु पर प्रहार और समस्या का प्रचार है...समाधान का ख्याल सिर्फ एक वाद-विवाद का बिंदु है, उनकी मूल योजना का भाग नहीं है। वामपंथ को समस्या के समाधान का टूल ना समझें, वामपंथी वो हैं जिन्हें समाधान से समस्या है।

रूल नंबर 13. (यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है):

'अपने टारगेट को चुनें, फ्रीज कर दें, पर्सनलाइज करें और धूल में मिला दें... अपने आक्रमण को व्यक्तिकेन्द्रित रखें।' उसके समर्थन के सारे रास्ते बन्द कर दें, और उसे किसी भी कोने से सहानुभूति ना पाने दें। व्यक्ति पर हमला करें , संस्था

पर नहीं। व्यक्तिगत हमला ज्यादा परिणाम देता है।

इस रणनीति के तो आपको सैकड़ों उदाहरण मिल जाएँगे। इनका पूरा का पूरा तंत्र एक बार में एक व्यक्ति पर हमला करता है, एक पार्टी या संस्था पर नहीं। जैसे अगर इन्हें भाजपा के किसी नेता के किसी बयान पर शोर मचाना होता है तो ये पूरी पार्टी पर हमला नहीं करते। मीडिया चिल्लाता है 'गिरिराज सिंह का विवादास्पद बयान'...और थोड़ी देर बाद पार्टी को लगने लगता है कि एक व्यक्ति के लिए पूरी पार्टी की बदनामी हो रही है। वैसे में पूरी पार्टी डैमेज कंट्रोल के लिए उस एक व्यक्ति को अलग-थलग कर देती है। ये वो भेड़िए हैं जो अपने शिकार को उसके झुंड से अलग करके नोच खाते हैं। यह व्यक्तिगत हमले करने की नीति आप पूरी दुनिया में देख सकते हैं, चाहे भारत में मोदी पर हो या अमेरिका में ट्रम्प पर।

'रूल्स फॉर रेडिकल्स' पिछले 40-50 सालों में वामियों की रणनीति की रीढ़ रहे हैं। अलिन्स्की ने पुस्तक की प्रस्तावना में इस पुस्तक को समर्पित किया है लूसिफर, यानि शैतान को और यह सचमुच शैतान का मैनुएल है। यह नैतिक-अनैतिक का प्रश्न नहीं है। यह शुद्ध रणनीति है। इसे समझना और इसका अभ्यास करना वर्जित नहीं है। क्योंकि शत्रु को जानना युद्ध की तैयारी का पहला कदम है।

12: संघर्ष से सत्ता

जब मैं वामपंथियों के बारे में लिखता हूँ तो एक बाधा आती है। यह नहीं समझ पाता हूँ कि वामपंथी ऐसे हैं क्यों? क्यों वामपंथी राजनीति संघर्ष और तकरार की राजनीति है? समाज में बखेड़ा खड़ा करने में उनका क्या लाभ है?

यह शुरू हुआ था अमीर और गरीब के संघर्ष से, मजदूर और उद्योगों के, कृषकों और जमींदारों के संघर्ष से। वह आज समाज में अनेक रूपों में फैल गया है... नस्लों, जातियों, लिंग और यौन व्यवहार की प्राथमिकताओं का संघर्ष...हर रूप में, सामाजिक संरचना की आखिरी तह तक चला गया है। इन्होंने सिर्फ उद्योग और व्यवसाय को ही नहीं बर्बाद किया है, राष्ट्र, सभ्यता, समाज और सभ्यता की मूल इकाई, परिवार तक को नष्ट करने में अनवरत लगे हैं। इन्होंने असीम विषाद और कष्ट की विरासत जमा की है...गरीबी, भुखमरी, युद्ध...करोड़ों को अनाथ किया है, और इन अनाथों में पश्चिमी सभ्यता में टूटते परिवारों से अनाथ हुए बच्चों को भी गिन लीजिए, क्योंकि जो पश्चिम का वर्तमान है वही भारत के लिए भविष्य में होगा अगर हम नहीं चेते।

पर कोई क्यों यह विनाश-गाथा रचना चाहेगा? क्यों समाज में अनावश्यक संघर्ष खड़ा करना चाहेगा? क्यों कोई वामपंथी बनना चाहेगा? इससे इन्हें मिलना क्या है?

तो अधिक स्पष्ट बोलूँगा, सत्ता पहला नियम है, 'संघर्ष से सत्ता आती है।'

इससे भी आगे जाएँ - 'सत्ता सिर्फ संघर्ष से ही आती है'। राजनीतिक शक्ति के निर्माण का और कोई तरीका है ही नहीं।

राजनीतिक सत्ता के निर्माण के दो ही रास्ते हैं - संघर्ष का निर्माण, या फिर संघर्षों का नियंत्रण।

सभी महान राजनीतिक सत्ताएँ संघर्षों से जन्मी हैं। इसके उदाहरण इतने अधिक

हैं कि मैं उनकी गिनती कराने के फेरे में नहीं ही पड़ूँगा।

किंतु संघर्षों के नियंत्रण से सत्ता और शक्ति की स्थापना के कुछ कम उदाहरण हैं। चाणक्य के काल में मौर्य साम्राज्य की शक्ति यूनानियों के साथ संघर्ष से नहीं पनपी, बल्कि भारतीय राज्यों के आपसी संघर्ष को नियंत्रित करने से उत्पन्न हुई। गैरीबाल्डी ने इटली में और बिस्मार्क ने जर्मनी में आंतरिक संघर्षों को नियंत्रित करके नए महान राष्ट्रों की स्थापना की। ज्यादा नया और मेरा मनपसंद उदाहरण है, 60 के दशक में ली कुआन यू ने सिंगापुर के विभाजित और संघर्षरत समाज के आंतरिक संघर्षों को नियंत्रित करके एक शक्तिशाली राष्ट्र निर्मित किया।

किंतु यह रचनात्मक और श्रमसाध्य काम है और वामपंथी श्रम के लिए नहीं जाने जाते, रचनात्मकता के लिए तो बिल्कुल नहीं वे चालाकी और कुटिलता के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने समाज के अंदर इतनी सफलता से इतने सारे संघर्ष खड़े कर लिए हैं, और उससे उनकी असीमित शक्ति प्रवाहित होती है। वे निर्धारित करते हैं, किसे प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बनना चाहिए और किसे नहीं, उन्हें पद पर रह कर क्या करना चाहिए और क्या नहीं, आप अपने ड्रॉइंग रूम में बैठ कर क्या कह सकते हैं और क्या नहीं कह सकते...और तो और, अपनी खोपड़ी के अंदर आप क्या सोचेंगे और क्या नहीं, वही ये भी निर्धारित करते हैं। पूरे विश्व पर वामपंथियों की इतनी असीमित शक्ति है, वह भी बिना सत्ता में बैठे।

और यह शुद्ध शक्ति है, बिना सत्ता की सत्ता...बिना किसी जिम्मेदारी के सत्ता। यह किसे प्यारी नहीं लगेगी? कौन नहीं चाहेगा इतनी सत्ता? जरा-सा कष्ट और विषाद, कुछ लाख या करोड़ लोगों का जीवन आखिर चीज क्या है इसके सामने?

1937 में जर्मनी से भागकर अमेरिका में बसे वामपंथी होर्कहाइमर ने क्रिटिकल थ्योरी दी थी, जिसका मूल है कि कुछ भी आलोचना से परे नहीं है...धर्म, नैतिकता, समाज, राष्ट्र, माता-पिता, प्रेम, भक्ति, सत्य, निष्ठा...हर चीज की बस आलोचना करो...हर चीज में बुराई खोजो, निकालो...हर पवित्र संस्था, व्यक्ति,

विचार और भावना की निंदा करो...

1960 के अमेरिका में एक दूसरे वामपंथी हर्बर्ट मार्क्यूस के नेतृत्व में चले लिबरल मूवमेंट में इसका खुला प्रयोग सामने आया जिसने परिवार और राष्ट्रवाद के स्थापित मूल्यों के विपरीत एक भ्रष्ट, पतित, नशे में डूबे हुए, वासनाग्रस्त उच्छ्रृंखल अमेरिकी समाज की स्थापना का अभियान चलाया...जिसने अमेरिका में अपराध, नशा और समलैंगिकता की महामारी फैला दी...

बेटे को यह समझा रहा था, तो उसे यह नहीं समझ में आया कि कोई जानबूझ कर ऐसा एक समाज क्यों बनाना चाहेगा? इसका राजनीति से क्या रिश्ता है? ऐसे एक मूल्यहीन समाज के निर्माण से सत्ता पर कैसे कब्जा किया जा सकता है, कैसे शक्ति आती है?

यह अमेरिका था। उसके स्थापित मूल्यों को उखाड़ कर वामपंथियों को तत्काल और प्रत्यक्ष सत्ता नहीं मिली। लेकिन उसी समय दुनिया के दूसरे छोर पर एक दूसरे विशाल देश में इसी क्रिटिकल थ्योरी का प्रयोग सत्ता-नियंत्रण के लिए हो रहा था। देश था चीन, और यह प्रयोग करने वाला व्यक्ति था माओ। एक समय मार्क्स-माओ-मार्क्यूस का नाम वामपंथ की त्रिमूर्ति के रूप में लिया जाता है... आज टैक्टिकल कारणों से वामपंथियों ने मार्क्यूस का नाम जन-स्मृति से लगभग छुपा रखा है।

1966 में अमेरिका में जिस दिन नशेड़ी वामपंथी संगीत बैंड बीटल्स ने अपना सुपरहिट एल्बम 'रिवाल्वर' रिलीज किया था, ठीक उसी दिन चीन में माओ ने अपने कल्चरल रेवोल्यूशन की घोषणा की थी। इस सांस्कृतिक क्रांति में माओ ने सभी पुराने बुर्जुआ मूल्यों को जड़ से उखाड़ कर उसकी जगह सिर्फ वामपंथी क्रांतिकारी सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने का आह्वान किया। माओ के बनाये संगठन रेड-गार्ड्स ने सभी क्रांतिविरोधी प्रतिक्रियावादी तत्वों और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों पर हमला बोल दिया।

रेडगार्ड्स मूलतः स्कूली बच्चों का झुण्ड था जिन्हें भीड़ लगा कर किसी भी

व्यक्ति के विरुद्ध हिंसा करने के लिए उकसाया जाता था। क्रांति के नाम पर ये बच्चे किसी भी व्यक्ति को पकड़ कर मारते, पीटते, उसकी हत्या तक कर डालते थे। इनका आतंक इतना था कि इनके हाथ में पड़ने के डर से अनेक लोगों ने आत्महत्या कर ली और अपने पूरे परिवार को जहर देकर मार डाला। इस कल्चरल रेवोलुशन का आतंक लगभग दस साल चला और उनके बहाने से माओ ने पार्टी के भीतर अपने सभी विरोधियों को कुचल डाला। कल्चरल रेवोलुशन चीन में गृह युद्ध और अराजकता का काल था जिसमें लाखों लोग मारे गए।

शाब्दिक, वैचारिक अराजकता सिर्फ सांकेतिक नहीं होती...उसमें विराट राजनीतिक शक्ति छुपी होती है। और एक वामपंथी इस शक्ति को पहचानता है और उसके प्रयोग के उचित अवसर की प्रतीक्षा करता है। हम भी पहचानें और समय रहते उसका प्रतिकार करें...नहीं तो जब दरवाजे पर हजारों की भीड़ खड़ी मिलेगी तो कुछ नहीं कर पाएँगे..

13 : चीन की त्रासदी- 1

वामपंथ के पक्ष में जो सबसे बड़ा तर्क आता है वह है कम्युनिस्ट चीन की आर्थिक सफलता।

पर चीन की सफलता में कितना योगदान कम्युनिज्म का है और कितना उसी कम्युनिज्म के विरुद्ध चीन के आंतरिक संघर्ष का? चीन कम्युनिज्म के कारण सफल हुआ या कम्युनिज्म के बावजूद?

चीन का कम्युनिज्म के स्वर्ण काल में क्या अनुभव रहा यह जानने लायक बात है। चीन ने माओत्से तुंग के नेतृत्व में एक बड़ी लड़ाई जीती थी और 1949 में स्वतंत्रता प्राप्त की थी। चेयरमैन माओ चीन के महामानव गिने जाते थे। उधर चीन के बड़े भाई की भूमिका में पड़ोसी कम्युनिस्ट रूस था।

पर स्टॅलिन की मृत्यु के बाद माओ की रूसी राष्ट्रपति ख्रुश्चेव से नहीं बनी। जिस तरह ख्रुश्चेव ने स्टॅलिन की मृत्यु के बाद स्टॅलिन की आलोचना की और उसे अपमानित किया, वह माओ को अपने लिए भविष्य के खतरे की घंटी लगा। ख्रुश्चेव का कम्युनिस्ट नीतियों और सिद्धांतों से समझौता भी माओ को पसंद नहीं आया। अपने देश के अंदर भी ऐसी प्रवृति वाले प्रगमटिक नेताओं को माओ पसंद नहीं करता था और उन्हें संशोधनवादी (रिविजनिस्ट) कहता था।

चीन को विशुद्ध साम्यवादी सिद्धातों के आधार पर गढ़ने को तत्पर माओ को देश के औद्योगिक और आर्थिक विकास का एक बड़ा ही शुद्ध कम्युनिस्ट आइडिया आया जिसे उसने अपनी महत्वकांक्षी योजना 'द ग्रेट लीप फारवर्ड' के साथ लॉन्च किया।

उसने कम्युनिस्ट सिद्धांतों पर पूरे देश की विशाल जनशक्ति के मास मोबिलाइजेशन का प्लान बनाया। उसने पूरे देश के अंदर लोगों को हजारों कम्यून के अंदर इकट्ठा किया। लोगों को सामूहिक कृषि और सामूहिक औद्योगिक विकास और इंफ्रास्ट्रक्चर निर्माण में लगा दिया गया। उन्हें पकड़-पकड़ कर और

घरों से खींच कर इन कम्यून में ठूँस दिया गया और सामूहिक खेती के प्रयोग किये गए। उन्हें बड़े बड़े डैम बनाने की योजनाओं में लगा दिया गया...हालाँकि किसी के दिमाग में कोई स्पष्ट योजना नहीं थी कि ये डैम बन क्यों रहे हैं और इनका किया क्या जाना है। ये सब जनशक्ति के इस्तेमाल के शुद्ध कम्युनिस्ट प्रयोग थे।

साथ ही माओ के दिमाग में यह बात घुस गई कि किसी भी देश की तरक्की और विकास का मानक उसका स्टील का उत्पादन है। उसने लोगों को बड़े पैमाने पर अपने अपने घरों में स्टील बनाने के काम में लगा दिया। लोगों ने अपने अपने घर के पिछवाड़े में स्टील की भट्टियाँ लगा लीं। जिसे जहाँ कहीं लोहे का जो कुछ भी मिला उसे पिघला कर स्टील बनाने में लग गए। पार्टी के पदाधिकारियों को अपने अपने क्षेत्र में टारगेट पूरे करने का काम मिला और उन्होंने सबको इसमें झोंक दिया। लोगों ने अपने घर के बर्तन, दरवाजे के हैंडल, खिड़कियों की छड़ें, खेती के औजार...सबकुछ पिघला डाले और पिघले लोहे के बेडौल लोथड़ों को स्टील कह कर दिखाया जाने लगा। पार्टी का हर पदाधिकारी अपने अपने क्षेत्र से स्टील के उत्पादन के आंकड़े बढ़ा चढ़ा कर देने लगा। पूरा देश इस अजीब से अनुपयोगी और अर्थहीन पागलपन में जुट गया।

किसानों को उनके खेतों से निकाल कर कम्यूनों में डाल दिया गया और 'स्टील' बनाने के काम में लगा दिया गया। उधर उनके खेतों की फसल खड़ी-खड़ी सड़ गई। ज्यादातर लोगों के पास खेती करने के औजार, फसल काटने को हँसिया तक नहीं था। सबकुछ स्टील बनाने के लिए पिघलाया जा चुका था। नतीजा यह हुआ कि चीन में भयानक अकाल पड़ गया।

पर पार्टी के पदाधिकारी खूब बढ़चढ़ कर अपने अपने क्षेत्र में ग्रेट लीप की सफलताएँ गिनाने में लगे हुए थे। तो औद्योगिक और कृषि उत्पादन के अभूतपूर्व आँकड़े दिए जाने लगे। जो भी फसल हुई थी, सरकार ने उसका अधिग्रहण कर लिया। उधर इतनी अच्छी फसल के आँकड़े आने लगे तो माओ ने रूस से लिया

हुआ कर्जा समय से पहले लौटाने का फैसला कर लिया। यह कर्जा उस समय अनाज के रूप में लौटाया जाता था। तो जो भी फसल हुई थी उसका बड़ा भाग रूस को चला गया।

और यह पागलपन 1958-62, यानी कुल तीन साल चला। इन तीन सालों में चीन ने मानव सभ्यता के इतिहास का सबसे भयानक अकाल झेला। इसमें मरने वालों की संख्या का एक कंजर्वेटिव आँकड़ा कम से कम साढ़े तीन करोड़ का है। 1962 में माओ अपने ह्यूनान प्रान्त में अपने पैतृक गाँव में गया और वहाँ उसने अपनी आँखों से इस तबाही का मंजर देखा तो उसे कुछ कुछ शक हुआ कि सबकुछ सही नहीं चल रहा है। फिर उसने ग्रेट लीप फारवर्ड को समेटने के आदेश दिए...

तब तक उसे समझ में ही नहीं आया कि यह छलाँग उसे गड्ढे में ले जा रही है?

ऐसा नहीं है कि उसे बताया नहीं गया था। पहले कुछ महीनों में ही यह स्पष्ट हो गया था कि यह एक भारी मूर्खतापूर्ण भूल है। पर यह बात माओ को कहे तो कौन कहे? जिस किसी ने भी जरा भी कम उत्साह दिखलाया उसे क्रांति-विरोधी बुर्जुआ घोषित कर दिया गया। जरा-सी असहमति को विरोध समझ कर कुचल दिया गया। देंग सियाओ पिंग और जो-एन लाई जैसे समझदार और प्रैक्टिकल नेताओं को भी कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई। सिर्फ एक व्यक्ति ने साहस दिखलाया, उसका नाम था पेंग दे-व्हाइ, जो चीन का तत्कालीन रक्षा मंत्री और चीनी सेना का महान नायक था। पेंग दे-व्हाइ ने चीन के स्वतंत्रता युद्ध में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और कोरियाई युद्ध में अमेरिका जैसी महाशक्ति के विरुद्ध चीनी सेनाओं का सफल नेतृत्व किया था। वह माओ का निकटतम मित्र था और दोनों ने संघर्ष के दिन साथ साथ और बराबरी के स्तर पर बिताए थे। अगर माओ के सामने मुँह खोलने की किसी की हिम्मत थी तो पेंग दे-व्हाइ की ही हो सकती थी।

ग्रेट लीप फॉरवर्ड की एक और घटना बहुत ही प्रसिद्ध है। माओ ने घोषित किया कि खेतों में आने वाली गौरैया किसानों की दुश्मन हैं जो किसानों की फसल को खा जाती हैं। तो लोगों को गौरैयाओं को मारने के काम पर लगा दिया गया। यह काम कम्युनिष्टों ने इतने उत्साह से किया कि चीन से गौरैया विलुप्त हो गई। उधर इसका नतीजा यह हुआ कि टिड्डियों की संख्या बेहद बढ़ गई और टिड्डियों के झुंड के झुंड ने पूरे पूरे खेतों की फसल खा डाली। चीन के अकाल में यह भी एक महत्वपूर्ण फैक्टर था।

गौरैया और टिड्डियों का यह प्रसंग ग्रेट लीप फॉरवर्ड की एक घटना मात्र नहीं थी। यह वामपंथ का एक रेकरिंग थीम है – वामपंथ गौरैया को दुश्मन घोषित करता है और टिड्डियों को पालता है। टिड्डियाँ ही वामपंथियों की फौज हैं।

14: चीन की त्रासदी - 2

ग्रेट लीप फारवर्ड की विभीषिका पर माओ की आलोचना करने की हिम्मत की पेंग दे-व्हाई ने। पेंग दे-व्हाइ ने माओ को एक लंबा व्यक्तिगत गुप्त पत्र लिखा और ग्रेट लीप की समस्याएँ गिनाई और स्थिति से अवगत कराने का प्रयास किया। हालाँकि उसने यह आलोचना पब्लिकली नहीं, बल्कि एक व्यक्तिगत गुप्त पत्र में की थी। पर माओ ने असहमति को विद्रोह घोषित किया और इस मामले को लुशान की पार्टी कॉन्फ्रेंस में उठाया। उसने पूरी पार्टी को अल्टीमेटम दे दिया कि वे पेंग और माओ में एक को चुन लें। लोग सन्न रह गए क्योंकि पेंग माओ का अपना खास आदमी और घनिष्ट मित्र था। माओ पेंग दे-व्हाइ की यह गुस्ताखी इतने पर ही भूला नहीं और उसने आगे कल्चरल रेवोलुशन में इसका बदला भी लिया।

पेंग दे-व्हाई ने इस स्पष्टवादिता की कीमत चुकाई और इस विलक्षण सैन्य व्यक्तित्व को रक्षा प्रमुख के पद से हटा दिया गया। उसकी जगह माओ ने अपनी पसंद के व्यक्ति लिन बि-याओ को रक्षा मंत्री बनाया जिसने सेना को देश की रक्षक के बजाय माओ की राजनीतिक विचारधारा का समर्थक बनाने के लिए सेना की राजनीतिक दीक्षा का काम शुरू किया। सेना के अनेक जनरल जिन्होंने लॉन्ग मार्च और स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लिया था, हटा दिए गए। जो कोई भी पेंग दे-व्हाई का करीबी समझा गया, उसे निबटा दिया गया।

पर ग्रेट लीप की विभीषिका इतनी भयावह थी कि उससे बिल्कुल इनकार नहीं किया जा सकता था। इस कार्यक्रम की कमियों को खुद माओ को भी बेमन से स्वीकारना पड़ा, और उसने जैसे तैसे स्वीकार किया कि गलतियाँ हुई हैं और ग्रेट लीप के आशानुरूप परिणाम नहीं मिले।

ग्रेट लीप की विफलता से माओ की साख को गहरा धक्का लगा था। उसने धीरे धीरे सारे प्रशासनिक और संगठन के अन्य कार्यभार छोड़ दिये और पार्टी का

चेयरमैन बन कर रह गया। उसकी उम्मीद थी कि पार्टी और देश के सभी महत्वपूर्ण मुद्दों पर उसकी राय ली जाती रहेगी। पर देंग और जो एन–लाई जैसे दूसरी पंक्ति के नेताओं ने कमान सँभाल ली और वे धीरे धीरे देश को रास्ते पर लाने लगे। पर माओ को यह बात अखर रही थी कि उसे उचित महत्व नहीं दिया जा रहा था। वे ऐसी प्रतिक्रिया देते थे जैसे कि माओ की बातों को बहुत ध्यान और सम्मान से सुन रहे हैं, पर उस पर अमल नहीं करते थे। माओ ने कहा कि उससे एक मृत पूर्वज की तरह बर्ताव किया जा रहा है।

माओ ने ग्रेट लीप फॉरवर्ड की त्रासदी पर पार्टी के अंदर विरोध को सूँघना शुरू किया। कंम्यूनिज्म पूरी तरह से वैचारिक सरेंडर माँगता है। बिल्कुल इस्लाम के 'सबमिशन' की तरह। माओ को विरोध तो नहीं मिला लेकिन वैसा वैचारिक सबमिशन भी नहीं मिला जिसकी उसे अपेक्षा थी। लोगों के मन के अंदर की बात निकलने के लिए माओ ने कुछ वैसी ही तरकीब निकाली जैसा वह एक बार पहले भी कर चुका था।

1956 में चीन में 'हंड्रेड फ्लावर्स कैंपेन' चलाया गया था। माओ ने कहा की जैसे बगीचे में सैकड़ों फूल खिलते हैं, वैसे ही चीन में सैकड़ों विचार सामने आने चाहिए। उसने लोगों को सामने आने और कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना करने का आह्वान किया जिससे कि पार्टी अपने आप में सुधार कर सके।

लोगों ने इसे चीन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का स्वर्णिम अवसर समझा और खुल कर पार्टी की आलोचना करने लगे। इंटेलेक्चुअल, विद्वान, लेखक...सभी ने बढ़ चढ़ कर पार्टी की 'सकारात्मक आलोचना' का अपना कर्तव्य पूरा किया। यह आजादी कुछ महीने चली।

पर यह एक ट्रैप था। माओ ने ढूँढ़ निकाला कि किन लोगों के अंदर कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव नहीं था। उसके बाद उन सारे लोगों को प्रतिक्रियावादी, क्रांतिविरोधी और दक्षिणपंथी घोषित कर दिया गया और खोज खोज कर कुचल दिया गया।

खैर, वह 1956 था। अभी, 1962 में ग्रेट लीप की आलोचना के संदर्भ में भी माओ ने वही आजमाया हुआ तरीका फिर से अपनाया। उसने खुद अपनी आलोचना की और इसमें होने वाली गलतियों का जिक्र किया। उसने यह भी आह्वान किया कि लोग मिंग राजा के साहसी और ईमानदार मंत्री हाई-रुए की तरह सामने आकर साहस के साथ आलोचना करें।

महामानव माओ के मुँह से अपनी यह आलोचना उसकी महानता और विशाल हृदय के प्रमाण मान कर स्वीकार कर लिए जाने चाहिए थे। माओ अपनी आलोचना कर रहे हैं, इसका यह मतलब थोड़े ना है कि दूसरे भी आलोचना करने लगें।

लोग इस बार इस ट्रैप में नहीं पड़े। सभी रक्षा मंत्री पेंग दे-व्हाई का हाल देख चुके थे। सिर्फ बीजिंग के वाइस मेयर वू-हान इस ट्रैप में फँसे। उसने भी खुल कर विरोध या आलोचना करने के बदले हाई-रुए के जीवन पर एक नाटक लिख दिया। नाटक था 'हाई-रुए की बर्खास्तगी।'

हालाँकि नाटक ऐतिहासिक संदर्भ में था पर यह समझना कठिन नहीं था कि यह रक्षामंत्री पेंग दे-व्हाई की बर्खास्तगी की ओर छुपा इशारा है। इस नाटक ने चीन की राजनीति में एक तूफान ला दिया जिसकी परिणति कल्चरल रेवोलुशन में हुई।

कल्चरल रेवोलुशन चीनी इतिहास का सबसे भयानक काल है। इसे ग्रेट लीप फॉरवर्ड के साथ निरंतरता में ही देखा जाना चाहिए, क्योंकि यह चेयरमैन माओ के शुद्ध साम्यवाद के आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक प्रयोगों की उपज है और इसका मूल उद्देश्य माओ के व्यक्तिगत आभामंडल का निर्माण करना था।

माओ का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। उसे एक व्यक्ति को नहीं, अपने विरुद्ध विद्रोह की हर संभावना को कुचलना था। वह चीन में पल रही रिविजनिस्ट प्रवृतियों से नाराज था और क्रांतिकारी विचारों को कमजोर किये जाने से चिंतित था। पर वह मूल रूप से चिंतित था कि किस तरह कम्युनिस्ट रूस में पहले ख्रुश्चेव ने स्टालिन

को अपमानित किया और फिर ब्रेज्नेव ने ख्रुश्चेव के प्रति विद्रोह करके उसे हटा दिया। वह लोगों के मन में पल रहे विद्रोह या विरोध की किसी भी संभावना से चिंतित था।

उसने इस हाई-रुए वाले नाटक को मुद्दा बनाया। पार्टी का बॉस और कम्युनिस्ट पार्टी का हैवीवेट पेंग चान उस नाटक के लेखक वू हान का करीबी था। उसकी अध्यक्षता में उसने एक कमिटी बनाई और उस नाटक पर रिपोर्ट माँगी। पेंग चान ने माओ के मनमुताबिक रिपोर्ट नहीं दी, और नाटक को एक एकेडमिक एक्सरसाइज कह कर टाल दिया।

माओ के लिए इतनी असहमति काफी थी। उसकी आज्ञा ही नहीं, इसकी इच्छा को भी पूर्ण समर्पण चाहिए था।

माओ ने बीजिंग छोड़ दिया और वह शंघाई चला गया। कुछ ऐसा लगा जैसे माओ ने अपने आप को सार्वजनिक जीवन से अलग कर लिया है पर माओ सिर्फ अपने काउंटर-अटैक की तैयारी कर रहा था। शंघाई पार्टी का मुख्यालय था, और वहाँ माओ ने अपना 'गैंग ऑफ फोर' गठित किया जिसके हाथ में माओ ने कल्चरल रेवोलुशन की कमान पकड़ा दी। इस गैंग ऑफ फोर में एक महत्वपूर्ण सदस्य थी माओ की आखिरी पत्नी जो एक बी-ग्रेड सिनेमा एक्ट्रेस भी थी।

इस नाटक के बहाने से माओ ने उन लोगों की पहचान की जो पार्टी के अंदर माओ के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं थे। उन्हें भी आने वाले तूफान की आहट मिलने लगी थी। पार्टी के अंदर ही वे सारे लोग एक दूसरे का साथ छोड़ने लगे। कुछ महीने बाद जब माओ ने पूरी ताकत से कल्चरल रेवोल्यूशन का तूफान खड़ा किया तो उसमें ये सारे लोग बह गए। आने वाले कुछ वर्षों में माओ ने अपनी शक्ति के प्रदर्शन के लिए चीन के नेताओं की पूरी पीढ़ी को, जिन्होंने चीन की स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा था, अपमानित और प्रताड़ित किया, जेल में डलवा दिया या मरवा दिया। वहीं अगली पूरी पीढ़ी को पाशविकता और अमानवीय क्रूरता की ओर धकेल दिया।

15 : चीन की त्रासदी - 3

माओ ने अपने रक्षा मंत्री लिन बियाओ और अपने सीआरजी यानी कल्चरल रेवोल्यूशन ग्रुप को रेड गार्ड्स खड़ा करने का काम सौंप दिया। उधर कम्युनिस्ट पार्टी के प्लैनम में माओ ने पार्टी के नेताओं को खूब लताड़ लगाई। उन्हें क्रांति के मार्ग से भटकने के लिए डाँटा और पार्टी के टॉप नेताओं को बुर्जुआ का एजेंट घोषित कर दिया। इनमें प्रधानमंत्री जो एन लाई से नीचे के सारे नेता घसीट लिए गया। देंग सियाओ पिंग, लिउ शाओ ची जैसे नेता जिन्होंने चीन की स्वतंत्रता के युद्ध में निर्णायक भूमिका निभाई थी, और जू देह जैसे जनरल जिसने चीनी पीपल्स लिबरेशन आर्मी की स्थापना की थी, भी शामिल थे। यानी पूरी पीढ़ी जिसने चीन की स्वतंत्रता के लिए जिंदगी दे दी।

उसने चीनी जनता को क्रांति को अपने हाथ में लेने का आह्वान किया। उसी प्लैनम के बीचोबीच माओ ने अपना एक पोस्टर जारी किया, जिस पर लिखा था – बोम्बार्ड द हेडक्वार्टर... यह माओ के रेडगार्डस के लिए खुला संदेश था कि वे पार्टी के अंदर या बाहर जिस किसी को चाहे अपना निशाना बना सकते हैं।

अगस्त 1966 में रेड गार्ड्स की एक विशाल रैली तिनामेन स्क्वायर में हुई जिसमें लगभग 10 लाख लोगों ने भाग लिया। इसे माओ ने संबोधित किया, और उसमें माओ ने रेड गार्ड्स का लाल आर्म बैंड बाँधा। उसके बाद ऐसी ऐसी कुल आठ रैलियाँ हुई और इसमें पूरे देश के कोने कोने से लगभग एक करोड़ रेड गार्ड्स ने भाग लिया। इन रेड गार्ड्स को देश भर में अपनी समझ से क्रांतिकारी गतिविधि चलाने का आह्वान किया गया और सभी प्रतिक्रिया वादी क्रांतिविरोधी शक्तियों को कुचलने का संदेश दिया गया। इसमें 4 ओल्ड्स यानि पुरानी परम्परायें, पुरानी संस्कृति, पुरानी आदतें और पुराने विचारों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी गई। जो कोई भी बात जो इन चार 'ओल्डस' से जुड़ी थी, वह सभी इस आंदोलन के दायरे में आ गए।

ये रेड गार्ड्स कौन थे? वे मूलतः 15–17 साल के स्टूडेंट्स थे। बाद में इनमें फैक्ट्री वर्कर्स भी शामिल हो गए। वर्षों चीन में सारे स्कूल बन्द रहे और बच्चे क्रांति करते रहे। ये रेडगार्ड्स पूरे चीन में रेल से कहीं भी आ जा सकते थे। किसी भी दुकान से कुछ भी उठा सकते थे और कहीं किसी के घर में घुसकर खाना खा सकते थे। मतलब यह एक मजेदार पार्टी थी जो चीनी पब्लिक के कॉस्ट पर वर्षों चली। यह दूरदराज के गाँव के बच्चों के लिए बीजिंग घूमने का सुनहरा अवसर भी था।

और इनके आंदोलन और रेवोल्यूशन में कुछ भी वर्जित नहीं था। ये लड़के किसी भी एक व्यक्ति को अपने स्ट्रगल सेशन के लिए चुनते थे जो इनके हिसाब से क्रांति विरोधी था। इनका झुण्ड किसी के भी घर में घुसकर उसके यहाँ तोड़फोड़ करता था। वहाँ मौजूद कोई भी चीज जो बुर्जुआ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थी वह तोड़ फोड़ दी जाती या लूटकर ले जाई जाती थी। किसी के घर की कोई पुरानी पेंटिंग या कलाकृति, कोई भी कीमती सामान इसका शिकार बनता था। यहाँ तक कि पुराने सोने के गहने भी पुरानी संस्कृति का प्रतीक होने की वजह से लूट लिए जाते थे। हजारों क्विंटल सोना इस बहाने से लोगों के घर से लूट लिया गया। ये रेड गार्ड्स अपने शिकार को उसके घर से खींचकर मारते पीटते हुए लाते थे। उसके कपड़े फाड़ देते या उसपर कालिख पोत देते। एक सार्वजनिक स्थल पर या स्टेज पर खड़ा करके उसे बुरी तरह पीटते। उसे अपने क्रांतिविरोधी होने की स्वीकृति करनी होती थी और अपने सहयोगियों और मित्रों का नाम बताना पड़ता था। कुछ भी करना मना नहीं था। पीटना, आँखें फोड़ देना, नंगा करना, उसके परिवार के सदस्यों को पीटना या बलात्कार करना या हत्या कर देना...सबकुछ जायज था, सबकुछ क्रांति का मार्ग था। जो लोग इन स्ट्रगल सेशन में फँस कर बच जाते थे उनका पूर्ण सामाजिक बहिष्कार हो जाता था। उनसे सहानुभूति या सामाजिक संपर्क रखने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। अगर कोई जीवित बचता भी था तो यह उसकी सामाजिक हत्या होती थी। बहुत से लोग इस प्रताड़ना से गुजरने के बाद आत्महत्या कर लेते थे। बहुत से लोगों ने इस

संकट को आसन्न जानकर पहले ही आत्महत्या कर ली। अनेक लोगों को उनके घर से निकाल कर सुदूर स्थानों में भेज दिया गया और उनके परिवार से अलग कर दिया गया। करोड़ों जीवन और परिवार तबाह हो गए।

कोई भी खतरे से बाहर नहीं था। बच्चों ने अपने स्कूल के टीचर्स की पिटाई और हत्या कर दी। बच्चों ने अपने माँ बाप तक को बुर्जुआ और क्रांतिविरोधी घोषित कर दिया और अपने साथी रेडगार्ड्स के साथ मिलकर उन्हें भी घसीट कर स्ट्रगल सेशन में ले गए। जिसको जिससे दुश्मनी निकालनी थी, उसने निकाली। किसी के भी साथ कुछ भी हो सकता था।

कुछ भी आउट ऑफ बाउंड नहीं था। चीन की हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता के प्रतीक नष्ट कर दिए गए। हजारों म्यूजियम लूट लिए गए. कन्फ्यूसियस की समाधि और संग्रहालय लूट लिया गया। चीन से कीमती कलाकृतियों और बहुमूल्य शिल्प को लूट कर बाहर स्मगल करने का धन्धा भी खूब फला फूला।

इन स्ट्रगल सेशन में वैसे तो कोई भी सुरक्षित नहीं था। पर माओ के लिए इनका मुख्य निशाना थे उनकी अपनी कम्युनिस्ट पार्टी के वे लोग जिन्होंने माओ के बताए रास्ते पर नहीं चलने की गुस्ताखी की थी। इसमें पार्टी प्रेसीडेंट और जनरल सेक्रेटरी के पदों पर बैठे लोग... देंग, लिउ शाओ ची और जू देह जैसे लोग भी थे। लिउ शाओ ची को काफी समय से माओ निशाना बना रहा था। लिउ की पत्नी एक बेहद सुंदर और स्टाइलिश महिला थी और वह मैडम माओ की ईर्ष्या का केंद्र थी। दोनों को ऐसे ही स्ट्रगल सेशन में प्रताड़ित किया गया और फिर ट्रेटर घोषित करके जेल में डाल दिया गया। चीन के स्वतंत्रता संग्राम के इस हीरो की जेल में बिना इलाज के तड़प-तड़प कर मृत्यु हो गई। देंग सियाओ पिंग को बीजिंग से दूर एक गाँव में निर्वासित कर दिया गया जहाँ वह यह बर्बादी देखता अपनी बारी का इंतजार करता रहा।

रेड गार्ड्स ने अनेक जगह स्थापित कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों पर कब्जा कर लिया और पार्टी पदाधिकारियों को मार डाला। अनेक स्थानों पर उन लोगों ने

सेना के शस्त्रागार लूट लिए और एक उपद्रवी भीड़ पूरी तरह से सशस्त्र गुंडों और अपराधियों की फौज बन गयी। सेना को खुद इनसे निबटने में तकलीफ होने लगी, क्योंकि माओ और रक्षा मंत्री लिन बियाओ ने भी सेना के बजाय विद्रोही रेड गार्ड्स का साथ दिया। सेना को बिना क्रांति को बाधित किये व्यवस्था बनाये रखने का असंभव काम सौंपा गया। जहाँ कहीं सेना ने कड़ाई करनी चाही, सैन्य अधिकारियों को कठोर दंड झेलने पड़े।

पूरा चीन अब एक गृह युद्ध की स्थिति में आ गया था। रेड गार्ड्स के अंदर भी अनेक गुट बन गए थे जो एक दूसरे को बुर्जुआ घोषित करते हुए आपस में सशस्त्र संघर्ष में उलझे हुए थे। सच्चाई यह थी कि स्थिति पर किसी का नियंत्रण नहीं था। प्रधानमंत्री जो-एन लाई और स्वयं चेयरमैन माओ का भी नहीं। सत्ता और शक्ति एक ऐसी चीज है जो आप अगर किसी के हाथ में पकड़ा दें तो वापस लेना आसान नहीं है।

यह पूर्ण अराजकता की स्थिति अगले तीन वर्षों तक चरम पर रही। फिर जो-एन-लाई माओ को किसी तरह यह समझाने में सफल हुए कि क्रांति अब सही दिशा में नहीं जा रही। लेकिन इसे वापस समेटना आसान नहीं रहा। जिन रेड गार्ड्स के हाथ में अब हथियार थे उन्हें वे वापस करने को तैयार नहीं थे और अनेक जगह पर आर्मी को रेड गार्ड्स को क्रूरता से कुचलना पड़ा। लाखों रेड गार्ड्स, जिन्हें यह समझ में नहीं आया था कि पार्टी अब खत्म हो गई है, आर्मी के हाथों मारे गए।

यह कल्चरल रेवोल्यूशन कुल दस साल, यानि 1966 से माओ की मृत्यु के साल 1976 तक चला। यह माओ के पहले महान साम्यवादी प्रयोग द ग्रेट लीप फॉरवर्ड की विभीषिका से उत्पन्न आलोचना की प्रतिक्रिया में हुआ माओ का दूसरा महान क्रांतिकारी प्रयोग था। ग्रेट लीप से उत्पन्न अकाल में तीन से साढ़े तीन करोड़ लोग मारे गए थे। इस कल्चरल रेवोल्यूशन से पैदा हुए पागलपन और गृहयुद्ध में लगभग दो से तीन करोड़ लोग और मारे गए। माओ ने शुद्ध साम्यवादी

क्रांति के आग्रह में मासूम युवाओं की एक पूरी पीढ़ी को जानवर बना दिया।

चीन की जो समृद्धि और विकास आपको आज दिखाई देता है वह कम्यूनिज्म की उपज नहीं है। शुद्ध साम्यवाद के आग्रह का काल था माओ का यह काल... और यह पागलपन, मानवीय त्रासदी और असीम यंत्रणा ही वामपंथ की कुल उपलब्धि है।

16 : देंग सियाओ पिंग : चीन का पुनरुत्थान - 1

आधुनिक चीन का निर्माता माना जाता है देंग सियाओ पिंग को। पर इस निर्माण प्रक्रिया में कम्यूनिज्म की क्या भूमिका रही?

कल्चरल रेवोलुशन अपने चरम पर था। सिर्फ कम्युनिस्ट होना काफी नहीं था, सच्चे कम्युनिस्ट होने की माँग थी। और सच्चा कम्युनिस्ट हर हाल में, हर बात में, हर हत्या, नरसंहार और पागलपन में अपने नेता और डिक्टेटर का अनुचर होता है। जरा-सा दिमाग लगाया तो आप सच्चे कम्युनिस्ट नहीं रहे।

और इसी क्रम में देंग सियाओ पिंग सच्चे कम्युनिस्ट की परिभाषा पर चूक गए। हालाँकि उन्होंने माओ का कोई विरोध या विद्रोह नहीं किया था पर माओ के शुद्ध साम्यवादी सिद्धांतों के प्रति वह पूर्ण मतिशून्य प्रतिबद्धता भी नहीं दिखाई थी जिसकी अपेक्षा थी।

देंग ने चीन की आजादी की लड़ाई लड़ी थी। नेहरू जी की तरह कोट में गुलाब खोंस कर नहीं, जंगलों में बंदूक लेकर जापानियों और के एम टी से लड़ते हुए। आजादी के बाद माओ ने उन्हें पार्टी और सरकार के महत्वपूर्ण काम सौंपे, क्योंकि देंग की प्रसिद्धि एक सक्षम कुशल प्रशासक की थी। पर वित्त मंत्री रहते हुए उन्होंने कई ऐसे सुधार करने के प्रयास किये जो माओ के शुद्ध क्रांतिकारी मानकों पर खरे नहीं उतरे।

तो लिउ शाओ ची के साथ-साथ देंग भी रेड गार्ड्स के हत्थे चढ़ गए। उन्हें मारा पीटा और अपमानित किया गया। उनके पूरे परिवार को चीन के अलग-अलग सुदूर स्थानों पर भेज दिया गया। उनके पाँचों बच्चे अलग-अलग भेज दिए गए और उनमें से प्रत्येक को इन रेड गार्ड्स के स्ट्रगल सेशन से गुजरना पड़ा। उनके एक बेटे को एक मकान की खिड़की से फेंक दिया गया, जहाँ उसकी रीढ़ की

हड्डी टूट गयी और वह जीवन भर पैरालिसिस से ग्रस्त रहा।

माओ ने देंग पर पूँजीवादियों से साँठ-गाँठ के आरोप लगाए और उन्हें सुदूर चीन के एक कोने में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ अपने परिवार से दूर वे एक फैक्ट्री में काम करते थे और भावी चीन की योजना पर सोचते थे। पर प्रधानमंत्री जो एन-लाई ने अपनी पुरानी मित्रता का ख्याल रखते हुए इतना प्रबंध किया कि उनकी जान को कोई खतरा ना हो।

उधर कल्चरल रेवोल्यूशन अपनी अराजकता की सीमा को पार कर रहा था। माओ ने अपने वफादार रक्षामंत्री लिन बियाओ को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर रखा था पर उसके मन में यह शंका भी घर कर रही थी कि लिन बियाओ माओ से विद्रोह करने की योजना बना रहा है। लिन बियाओ को भी अब अपना अंत दिखाई देने लगा। माओ की हत्या के प्रयास के आरोप की सच्चाई तो स्पष्ट नहीं है पर माओ के दंश से बचने के लिए एयरफोर्स के प्लेन से रूस भागने का प्रयास कर रहे लिन बियाओ और उसकी पत्नी का प्लेन मार गिराया गया।

अब माओ का कोई घोषित उत्तराधिकारी नहीं रहा। प्रधानमंत्री जो एन-लाई को ब्लैडर कैंसर हो गया था और उनके दिन गिनती के थे। उधर माओ का अपना स्वास्थ्य खराब था। स्मोकिंग, शराब, विलासिता और असंयम के जीवन ने उसे बेहद बीमार कर दिया था और वह अपने बेडरूम तक सीमित रह गया था। माओ को भी अपना अंत नजदीक दिख रहा था और उसकी सबसे बड़ी चिंता यह थी कि उसके मरने के बाद इतिहास उसे कैसे याद करेगा।

इस बीच माओ ने अप्रत्याशित रूप से निक्सन और किसिंजर से राजनयिक संबंध स्थापित किये और माओ का क्रांतिकारी चीन अचानक कैपिटलिस्ट अमेरिका से सहयोग करने को तैयार हो रहा था।

इस विरोधाभास की अवस्था में चीन को सँभालने और चलाने के लिए चीनी नेताओं की अगली पीढ़ी तैयार नहीं थी। अपनी पीढ़ी के दूसरी पंक्ति के सक्षम नेतृत्व को माओ ने खत्म करवा दिया था और उनकी जगह जिन शुद्ध कम्युनिस्ट

सिद्धांतवादी रेडिकल लोगों को खड़ा किया था, उनके बारे में खुद माओ को भी पता था कि वे किसी काम के नहीं हैं। दूसरी ओर मैडम माओ और उनका गैंग ऑफ फोर माओ के मरने का इंतजार कर रहा था और सत्ता की गंध सूँघ रहा था।

ऐसी हालत में सिर्फ एक व्यक्ति बचा था जो चीन को सँभालने की क्षमता रखता था। वह था देंग सियाओ पिंग। मरने से पहले जो एन-लाई देंग को वापस बीजिंग में पुनर्स्थापित करके चैन से मरना चाहते थे। उधर माओ की नजर में देंग की सैद्धांतिक प्रतिबध्दता संदिग्ध थी। पर उसकी क्षमता और माओ के प्रति व्यक्तिगत वफादारी पर उसे भी शक नहीं था।

ऐसे में जो एन-लाई की मदद से देंग दबे पाँव वापस सत्ता के गलियारों में आये, और माओ ने उन्हें धीरे-धीरे सत्ता सौंपनी शुरू की। उधर प्रधानमंत्री जो एन-लाई का प्रभावशाली जीवन और कैरियर अपने अंत की ओर था और वे और अधिक बीमार थे। देंग ने धीरे धीरे अनाधिकारिक रूप से जो एन-लाई का स्थान ले लिया और 1975 में यू एन में चीन का प्रतिनिधित्व भी किया।

पर माओ के आसपास बैठे गैंग ऑफ फोर और विशेषत: मैडम माओ में देंग के प्रति विशेष रूप से घृणा का भाव था। वे लगातार देंग पर प्रहार करते रहे। उधर 1976 की शुरुआत में प्रधानमंत्री जो एन-लाई की मृत्यु हो गई और देंग का सुरक्षा कवच खत्म हो गया।

माओ के मन में कम्युनिस्ट सिद्धांतों की शुद्धता के प्रति गजब का मोह था और साथ ही माओ की चिंता थी कि अगर उसकी मृत्यु के बाद शासन में आया व्यक्ति कल्चरल रेवोल्यूशन के प्रति नकारात्मक विचार रखता है तो माओ की बहुत छीछालेदर होगी, जैसी मृत्यु के बाद रूस में स्टालिन की हुई थी। देंग पर विश्वास और उनकी क्षमता के प्रशंसक होने के बावजूद इस एक पैरामीटर पर देंग ने अपने को सिद्ध नहीं किया था। ऐसे में कम्युनिस्ट पार्टी की आधिकारिक मीटिंग में माओ ने देंग को कल्चरल रेवोल्यूशन की तारीफ करने को बाध्य किया...जिससे कि माओ की मृत्यु के बाद उसकी आलोचना ना हो सके। देंग ने

इस बात पर गोल मोल जवाब दिया कि पूरे कल्चरल रेवोल्यूशन के दौरान वे निष्कासित और निर्वासित थे इसलिए इस बारे में कुछ भी प्रमाणिकता से नहीं कह सकते...

माओ के मन में इतिहास में अपने स्थान को लेकर पर्याप्त चिंता थी। देंग का यह स्टैंड माओ को पसंद नहीं आया और ऊपर से मैडम माओ और गैंग ऑफ फोर माओ के कान लगातार भरते रहते थे। मृत्यु शय्या पर पड़े माओ की पकड़ अब भी सत्ता पर इतनी थी कि देंग को दूसरी बार निर्वासित होना पड़ा। सिर्फ सेना से अपने पुराने संपर्कों और पुराने सैन्य अधिकारियों के बीच उनकी प्रतिष्ठा का नतीजा था कि कम से कम उनका जीवन सुरक्षित रहा।

उधर माओ ने अपना उत्तराधिकारी एक बेहद कमजोर, अक्षम व्यक्ति को चुन लिया जिसका माओ से पूर्ण वफादारी का इतिहास था और जो पिछले कई दशकों से माओ के जूते चमकाने वालों की जमात में था। पर चीन का राष्ट्राध्यक्ष बनने के लिए उस दिन यह सबसे बड़ा क्वालिफिकेशन था।

17 : देंग सियाओ पिंग : चीन का पुनरुत्थान - 2

माओ की मृत्यु के समय देंग एक बार फिर निर्वासन में थे। उन्हें माओ के अंतिम संस्कार के समारोहों में शामिल होने की भी अनुमति नहीं थी। माओ के उत्तराधिकारी थे माओ के विश्वासपात्र ह्वा गुऑफेंग। गुऑफेंग को खुद माओ ने चुना था और यह उनके लिए सबसे बड़ा पॉवर बेस था, पर असल सत्ता के केंद्र वे नहीं थे। एक तरफ थे पार्टी के पुराने दिग्गज जिनके बीच देंग का बहुत सम्मान था और दूसरी ओर थी मैडम माओ की चौकड़ी जिसे गैंग ऑफ फोर कहा गया।

गैंग ऑफ फोर को कोई पसंद नहीं करता था। गुऑफेंग भी नहीं और उधर उनकी सत्ता पर कब्जा करने की योजना की खबरें हवा में थीं। तो गैंग ऑफ फोर को गिरफ्तार कर लिया गया। उधर पार्टी के पुराने लोगों ने देंग को धीरे-धीरे पार्टी में पुन:स्थापित किया। माओ के जाने के बाद देंग निर्विवाद रूप से पार्टी के अंदर नए विराट पुरुष थे, पर उन्होंने सत्ता पर कब्जा करने का कोई प्रयास नहीं किया।

गैंग ऑफ फोर पर मुकदमा चलाया गया और मृत रक्षामंत्री लिन बियाओ के साथ साथ उन सबको कल्चरल रेवोलुशन की ज्यादतियों और अत्याचारों का दोषी पाया गया। मैडम माओ ने इस पूरी सुनवाई के दौरान बेहद आक्रामक तेवर अपनाए रखा। उसका सबसे बड़ा तर्क यह था कि उसने यह सब चेयरमैन माओ के कहने पर किया था। उसका यह प्रसिद्ध कथन था - 'मैं तो चेयरमैन का कुत्ता थी...उसने जिसे कहा, मैंने उसे काटा'।

उनमें से दो को 20 वर्ष के कारावास और दो को फाँसी की सजाएँ सुनाई गई। बाद में सबकी फाँसी को आजीवन कारावास में बदल दिया गया। मैडम माओ ने आगे चलकर जेल के हस्पताल में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। चेयरमैन माओ को भी इन अपराधों का दोषी पाया गया पर चीन के इतिहास और स्वतंत्रता की लड़ाई में माओ के योगदान का ख्याल करते हुए माओ को अपमानित नहीं

किया गया। माओ के पोर्ट्रेट के साथ वह नहीं किया गया जो रूस में आगे चलकर लेनिन की मूर्ति के साथ किया गया।

देंग को सत्ता नहीं चाहिए थी। लेकिन उन्हें चीन की उन्नति और बदलाव चाहिए था। उन्होंने पहला परिवर्तन लाया शिक्षा के क्षेत्र में। शिक्षा को साम्यवादी सिद्धांतों की तोता रटन्त से अलग कर के साइंस और टेक्नोलॉजी की पढ़ाई से जोड़ा गया। चीनी छात्र बड़ी संख्या में पश्चिमी देशों, विशेषत: अमेरिकी यूनिवर्सिटीज में पढ़ने गए। वहाँ से जब इन छात्रों की खेप लौटी तो यह अपने साथ सिर्फ विज्ञान की किताबें ही नहीं, पश्चिम की खुली सोच और वहाँ की प्रगति के किस्से लेकर भी आई।

चीन के जिन क्षेत्रों में किसानों की हालत विशेष रूप से बुरी थी, उन्हें कम्यूनों से मुक्त करके अपने लिए खेती करने और अपना ख्याल खुद रखने के लिए छोड़ दिया गया। नतीजा यह हुआ कि उन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन एकाएक सुधरने लगा। फिर धीरे धीरे यह प्रयोग पूरे देश में दोहराया गया और किसानों के कंधे से कम्यूनिज्म का जुआ उतार कर उन्हें अपने ढंग से खेती करने के लिए मुक्त कर दिया गया।

खेती में उत्साहजनक परिणाम आने के बाद यही प्रयोग उद्योग और व्यवसाय में भी दुहराया गया। धीरे धीरे निजी उद्योगों और व्यवसायों की बाढ़ आ गयी। पहले कहा गया कि आठ कर्मचारियों वाले उद्योगों के मालिकों को पूँजीपति नहीं माना जायेगा। बाद में यह आठ कर्मचारियों वाला नियम भी गायब हो गया और चीन ने एकाएक कई पीढ़ियों के बाद संपन्नता और समृद्धि की गन्ध पाई।

ऐसा नहीं था कि विरोध नहीं हुआ। यह पार्टी के अंदर बैठे शुद्धतावादी साम्यवादियों के पसंद की बात नहीं थी और उन्होंने जमकर देंग का विरोध किया। पर वे सभी देंग के आगे बौने थे। देंग ने माओ को झेल लिया था, अब उनके लिए ये सारे विरोध हवा में उड़ते तिनकों जैसे थे।

देंग ने अपने कुछ बहुत ही प्रतिष्ठित विद्वानों को पश्चिमी यूरोप के पंद्रह शहरों की यात्रा पर भेजा और कैपिटलिस्ट देशों से क्या सीखा जा सकता है, इसपर रिपोर्ट देने को कहा। ये वे लोग थे जिनकी प्रतिबद्धता और ईमानदारी पर किसी को शक नहीं था और कोई यह नहीं कह सकता था कि ये देंग की बात ही दुहरा रहे हैं। इन लोगों ने वापस आकर जो रिपोर्ट दी, उसे लोगों ने कई घंटों तक मंत्रमुग्ध होकर सुना। इसमें देंग का अधिकांश विरोध उड़ गया और अगली पार्टी कांफ्रेंस में लोग देंग के समर्थन में खड़े हो गए और गुआॅफेंग की योग्यता पर उँगलियाँ उठने लगीं। पार्टी चेयरमैन गुआॅफेंग ने इज्जत से इस्तीफा देने में अपनी खैरियत समझी।

1978 में देंग सिंगापुर की यात्रा पर गए। यह यात्रा मूलतः सिंगापुर के प्रधानमंत्री ली कुआन यू को यह समझाने के लिए थी कि वे सुदूर पूर्व के देशों को चीन के समर्थन में और रूस के विरुद्ध समर्थन जुटाने के लिए संगठित करें। इस यात्रा ने इस पूरे क्षेत्र का इतिहास बदल कर रख दिया।

चीन सिंगापुर से संभवतः कुछ हजार गुना बड़ा है। पर ली कुआन ने एक बेहद साहसिक कदम लेते हुए देंग से एक बड़ा सीधा प्रश्न पूछा –'हम आपकी मदद क्यों करें? इस क्षेत्र के देश रूस से ज्यादा आपसे डरते हैं। हमारी समस्याएँ चीन की वजह से हैं। अगर आप अपनी जमीन का प्रयोग हमारे देशों में कम्यूनिज्म फैलाने में बंद कर दें, हमारे यहाँ के कम्युनिस्ट विद्रोहियों की सहायता करना बंद कर दें, तो कोई कारण नहीं है कि हम आपके मित्र ना बन सकें।'

देंग ने ली की दृष्टि को समझा और कुछ महीनों बाद चीन से सिंगापुर के कम्युनिस्टों को मदद मिलनी बन्द हो गई।

पर उस यात्रा में देंग सिंगापुर की आर्थिक और औद्योगिक सफलता से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि सिंगापुर में शतप्रतिशत एम्प्लॉयमेंट है, और हर व्यक्ति के पास अपना घर है। यानि जो वायदे कम्यूनिज्म आजतक करता आ रहा था, वह संभव हुआ था तो सिर्फ पूँजीवादी व्यवस्था से।

देंग सिर्फ अपनी पार्टी एफिलिएशन में कम्युनिस्ट थे, सैद्धांतिक प्रतिबद्धता में नहीं। इस सदी के इन दो महान चीनी मूल के नेताओं में यह बात कॉमन थी – वे सिद्धांतों को सिर्फ उद्देश्यों की पूर्ति का साधन समझते थे। कम्यूनिज्म हो या कैपिटलिज्म, जो भी समाज को समृद्धि दे, वह सही है। बहुत पहले देंग यह कहने के लिए जाने गए थे कि बिल्ली सफेद हो या काली, क्या फर्क पड़ता है... अगर वह चूहे पकड़ती हो..

और समृद्धि का रास्ता कम्यूनिज्म के दरवाजे से नहीं गुजरता है यह देखने में देंग नहीं चूके और उन्होंने रास्ता बदलने से परहेज भी नहीं किया। उन्होंने वापस आकर यह सिंगापुर मॉडल का प्रयोग दुहराया और दक्षिणी चीन में कई स्पेशल इकोनॉमिक जोन्स बनाये, जहाँ उद्योगों की स्थापना के लिए अनेक रियायतें दी गई।

ये जोन खूब सफल हुए और देखते-देखते देश के सबसे पिछड़े ये इलाके देश के सबसे सम्पन्न इलाके बन गए।

18 : कम्युनिस्ट देंग बनाम पूँजीवादी ली कुआन यू

इतिहासकारों को बीसवीं सदी का इतिहास लिखते समय यह दुविधा बहुत सताएगी कि देंग सियाओ पिंग और ली कुआन यू में महानतम राष्ट्रनायक किसे चुनें। दोनों ने एक पूर्वी परंपरागत समाज में पाश्चात्य पूँजीवाद के सफल प्रयोग किये। दोनों ने अपना अपना जीवन वामपंथी विचारधारा के प्रभाव में शुरू किया पर आगे चलकर प्रागमेटिज्म को चुना। दोनों ने परिणामों को सिद्धांतों के ऊपर महत्व दिया। ली ने जहाँ अपने प्रयोग एक डेमोक्रेटिक व्यवस्था के अंदर किये, वहीं देंग ने एक घोर कम्युनिस्ट समाज में। सिर्फ आर्थिक नीतियों में ही नहीं, सामाजिक व्यवस्था में भी ली ने सिंगापुर को घोषित रूप से और देंग ने चीन को अघोषित रूप से परंपरागत कंफ्यूशियन सिद्धांतों पर चलाया।

वहीं एक विरोधाभास यह भी है कि डेमोक्रेटिक व्यवस्था के बावजूद जहाँ ली ने अपनी लोकप्रियता और सर्वमान्यता से एक डिक्टेटर का रुतबा हासिल कर लिया था, वहीं एक कम्युनिस्ट व्यवस्था का प्रमुख होते हुए भी देंग को अपने प्रयोगों और विचारों के लिए काफी प्रतिरोध झेलना पड़ा। उन्हें अपने निर्णय धीरे-धीरे, सावधानी से लोगों के गले से नीचे उतारने पड़े।

धीरे-धीरे उन्होंने अपने विरोधियों को हाशिये पर धकेल दिया था। वे स्वयं सर्वोच्च पद पर नहीं थे, पर उनका प्रभाव सर्वोपरि था। फिर भी उनके ये प्रयोग कम्युनिस्ट विचारधारा के इतने विपरीत थे कि उनके विरोधी हमेशा बहुत मुखर रहे पर समर्थक थोड़े सहमे सकुचाये रहे।

स्पेशल इकनोमिक जोन्स ने देश में उन्नति का रास्ता खोल दिया और जो भी प्रान्त इन जोन्स में पड़े वे दूसरे क्षेत्रों की ईर्ष्या का केंद्र थे। यही नहीं, आर्थिक भ्रष्टाचार के आरोप भी खूब लगे, जो कि स्वाभाविक था। पर देंग की व्यक्तिगत इंटीग्रिटी पर कोई प्रश्न नहीं था।

देंग ने कई प्रभावशाली व्यक्तियों को चुना और उनके सहारे अपने आर्थिक सुधार लागू किये। वे अपने जीवन के आठवें दशक में थे और उनकी सुनने की शक्ति लगभग समाप्त हो गई थी। हर बात को माइक्रो-मैनेज करना संभव नहीं था। उनकी टीम में कई प्रभावशाली भविष्य के नेता उभरे। उनके आर्थिक सुधारों के प्रैक्टिकल कार्यान्वयन में मुख्य भूमिका रही शी जोंग्शुन की, जो वर्तमान राष्ट्रपति शी जिनपिंग के पिता थे।

इस बीच पूरी दुनिया में यह कम्युनिस्ट सरकारों के पतन का काल था। बर्लिन वॉल गिरी, रोमानिया के तानाशाह को हटाया गया और रूस के टुकड़े-टुकड़े हो गए। चीन में भी एक लहर तिनामेन स्क्वायर में छात्रों के विद्रोह के रूप में आयी थी, जिसे कुचल दिया गया था। पर चीन का नेतृत्व इन परिवर्तनों को लेकर बहुत नर्वस था। हालाँकि राष्ट्रपति जियान जे मिन देंग की टीम में थे, पर परिवर्तन की गति को लेकर वे भी बहुत चिंतित थे। सभी को लग रहा था कि जिस गति से परिवर्तन हो रहे हैं, उसे नियंत्रित नहीं किया गया तो चीन का भी वही होगा जो रूस का हुआ।

पर देंग की पकड़ जनता की नब्ज पर ज्यादा अच्छी थी। उनका आकलन था कि जन-विद्रोह से बचने का सबसे अच्छा रास्ता यह है सुधारों की गति घटाई नहीं, तेज की जाए। हालाँकि 1989 में वे सक्रिय राजनीति से रिटायर हो चुके थे, पर इस परिवर्तन के दौर में चीनी नेतृत्व की इस दुविधा को वे ध्यान से देख रहे थे।

1992 में, 88 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपनी आखिरी पारी खेली। वे अपने पूरे परिवार, पत्नी, बेटे बहू, नाती-पोतों के साथ छुट्टी मनाने पूरे चीन की यात्रा पर निकले। उनका सिर्फ एक बेटा उनके साथ नहीं गया जो कल्चरल रेवोल्यूशन के समय से पैरालाइज्ड था।

हालाँकि यह एक पारिवारिक छुट्टी थी, पर यह मूलतः एक राजनीतिक पीआर एक्सरसाइज थी। देंग जहाँ-जहाँ रुके, बड़ी संख्या में लोग उनसे मिलने आने लगे। वे हर जगह, हर रोज सामान्य जनता से मिलते...व्यवसायियों, कारीगरों,

उद्योगपतियों और किसानों से मिलते...उनसे बातें करते और हर जगह एक ही थीम थी...लोग और ज्यादा सुधार, और अधिक आर्थिक स्वतंत्रता चाहते थे और उन सबको देंग का संदेश भी स्पष्ट था...और अधिक मेहनत करो, अधिक रिस्क लो...अपना व्यवसाय और उद्योग बढ़ाओ...

यह मैसेज जनता के साथ-साथ शासन को भी स्पष्ट शब्दों में गया। उनकी यात्रा पर उमड़ती भीड़ और इसको मिलने वाले कवरेज को नजरंदाज करना आसान नहीं रह गया था। बीजिंग में बैठे नेतृत्व ने अवसर को पहचाना कि हवा किधर बह रही है और देखते देखते सारा पार्टी नेतृत्व आइडियोलॉजी से जुड़े अपने आग्रह और संकोच को छोड़ कर आर्थिक सुधारों की गति बढ़ाने के समर्थन में आ गया।

उसके बाद देंग ने और किसी राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लिया। उनका अपना परिवार राजनीति से हमेशा दूर ही रहा। 1997 में, 93 वर्ष के देंग का अपने घर में देहांत हो गया। हालाँकि वे काफी समय से बीमार और पार्किंसोनिज्म से पीड़ित थे, और उनके परिवार के अलावा किसी ने उन्हें वर्षों से नहीं देखा था। उनकी मृत्यु अपेक्षित थी पर उनके जाने के दुख में पूरा देश रो पड़ा। अगर आपने अटल बिहारी वाजपेयी जी की मृत्यु पर आँखें गीली की हों, या अकेले में फूट-फूट कर रोये हों तो इस राष्ट्रनायक के जाने के क्षण को खुद महसूस कर सकते हैं।

माओ और देंग के बीच का यह अंतर कम्युनिज्म के दो पहलुओं को बहुत स्पष्टता से दिखाता है। लोग कहते हैं, माओ एक महान वॉर-टाइम लीडर था, पर एक खराब पीस-टाइम लीडर था। पर इसे सिर्फ दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व का अंतर समझना इतिहास के इस सबक के साथ न्याय नहीं होगा।

माओ की अपनी नेतृत्व क्षमता संदेह से परे है। माओ के रहते दूसरा कोई भी व्यक्तित्व उसके सामने कहीं भी खड़ा नहीं हो सकता था। पर माओ की बहुत बड़ी कमजोरी थी कम्यूनिज्म के सिद्धांतों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता। उसे जो

कुछ भी करना था, कम्यूनिज्म के सिद्धांतों की सीमाओं के भीतर ही करना था।

सत्ता पर माओ की पकड़ परफेक्ट थी। माओ ने दिखाया कि वामपंथ सत्ता पर कब्जा करने का बेहतरीन हथियार है। पर शासन चलाना और जनता को सुख-समृद्धि देना वामपंथ के बस में नहीं है, यह लक्ष्य भी नहीं है। माओ जैसे सक्षम नेतृत्व में भी चीन जैसी विराट जनशक्ति कोई भी सकारात्मक परिणाम नहीं दे सकी। माओ के काल में कुछ मिला तो सिर्फ अंतहीन और अर्थहीन यंत्रणा और त्रासदी। यह वामपंथ का बेस्ट परफॉर्मेंस था...इसके अलावा और कोई उम्मीद भी नहीं रखें।

वहीं देंग ने किसी भी किस्म की सैद्धांतिक प्रतिबद्धता से स्वयं को नहीं बाँधा। कम्युनिस्ट विचारधारा से जीवन प्रारंभ करने के बावजूद उन्होंने इसकी विफलता को पहचानने में कोई गलती नहीं की।

उनका अपना चरित्र भी वामपंथ के एक बड़े चरित्र-दोष से अछूता रहा। व्यक्तिगत रूप से माओ के हाथ से असीम यंत्रणा झेल कर भी उन्होंने अपने लोकव्यवहार में कोई कटुता नहीं आने दी। सत्ता में सर्वोपरि होकर भी माओ को चीनी इतिहास से मिटाने और प्रतिशोध लेने की उन्होंने कोई कोशिश नहीं की। वहीं वे मृत्युशैया तक सत्ता से चिपके भी नहीं रहे और अपना लक्ष्य पूरा करके स्वेच्छा से सत्ता छोड़ दी, जो एक कम्युनिस्ट के लक्षण नहीं हैं। लेनिन, स्टॅलिन, माओ, कास्त्रो...हर सच्चा कम्युनिस्ट आखिरी साँस तक सत्ता से जोंक की तरह चिपका रहता है।

सच तो यह है चीन की कहानी वामपंथ की सफलता की कहानी नहीं है, बल्कि यह वामपंथ की विफलता और त्रासदी की ही कहानी है। चीन को जो कुछ भी मिला, कम्यूनिज्म से पीछा छुड़ा कर ही मिला। वामपंथ सिर्फ सत्ता पर कब्जा करने का साधन मात्र हो सकता है, यह कभी कोई अर्थपूर्ण समाधान और सुख-समृद्धि दे ही नहीं सकता।

19 : वामपंथी - हरे की लाल ढाल

वामपंथियों के प्रिय कवि हैं दुष्यन्त कुमार। उनका कोई जमावड़ा नहीं होता जिसमें एक पत्थर तबीयत से उछाल कर आसमान में सुराख नहीं किया जाता... या हंगामा खड़ा ना करने के हंगामे नहीं किये जाते।

पिछली पीढ़ी के वामपंथियों के प्रिय कवि थे फैज अहमद फैज। मुझे भी फैज का बुखार चढ़ा था जब मैं दसवीं में था। आज भी नूरजहाँ की आवाज में फैज की नज्में सुनना मुझे बहुत पसंद है।

फैज की नज्मों में जो एक लाइन है जिसे गुनगुनाते हुए वामपंथी की पूरी पीढ़ी बड़ी हुई थी वह है – 'सब ताज उछाले जाएँगे, सब तख्त गिराए जाएँगे...'

पूरी नज्म की कुछ लाइनें कुछ इस तरह हैं

हम देखेंगे

लाजिम है कि हम भी देखेंगे
वो दिन कि जिसका वादा है
जो लौह–ए–अजल में लिक्खा है...

....
जब अर्ज–ए–खुदा के काबे से
सब बुत उठवाए जाएँगे
हम अहल–ए–सफा, मरदूद–ए–हरम
मसनद पे बिठाए जाएँगे
सब ताज उछाले जाएँगे
सब तख्त गिराए जाएँगे
बस नाम रहेगा अल्लाह का
जो गायब भी है हाजिर भी
जो मंजर भी है नाजिर भी....

फैज कौन था। शायर तो था, पर इतनी-सी बात नहीं है। उसके पहले वह ब्रिटिश फौज में था और लेफ्टिनेंट कर्नल की रैंक तक गया था। विभाजन के समय उसने पाकिस्तान जाना चुना। वहाँ फौज से निकल कर वह पाकिस्तान टाइम्स का एडिटर बना। वह पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नामों में एक था। उसकी पत्नी एलिस जॉर्ज एक अंग्रेज महिला थी जो ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य थी। इंग्लैंड में रहते हुए वह वी के कृष्ण मेनन की सेक्रेटरी थी। भारत में वह अपनी बहन से मिलने आयी और फैज से मिली। उन दोनों का निकाह शेख अब्दुल्ला ने कराया था..हाँ, कश्मीर वाला शेख अब्दुल्ला उनके निकाह में मौलवी था। वह पाकिस्तान में बस गई और पाकिस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी की महत्वपूर्ण सदस्य रही।

1951 में लियाकत अली खान की सरकार के तख्तापलट के षड्यंत्र के आरोप में उसे गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इस रावलपिंडी कांस्पीरेसी केस का लीडर मे. जनरल अकबर खान फैज का करीबी, फौज में फैज का भूतपूर्व कमांडर और सक्रिय कम्युनिस्ट था।

और इतने समर्पित कम्युनिस्ट शायर की यह सबसे प्रसिद्ध नज्म पढ़िए...

सिर्फ ताज उछालने और तख्त गिराने की लाइनें पढ़ी होंगी आपने...आगे पढ़िए.. अर्ज-ए-खुदा के काबे से सब बुत उठवाए जाएँगे... 'अहल-ए-सफा' यानी आसमानी किताब को मानने वाले मसनद पर बिठाए जाएँगे...और बस नाम रहेगा अल्लाह का...

कोई मुस्लिम कितना भी कट्टर कम्युनिस्ट क्यों ना हो जाये...वह इस्लाम को नहीं छोड़ता। उसके लिए काबे के बुत हटाना ही इंकलाब है, अल्लाह का नाम ही सबसे बड़ी सत्ता है।

और कोई भी वामपंथी, किसी भी कौम का क्यों ना हो, कभी भी इस्लाम के खिलाफ कुछ नहीं बोलता। ये क्रिटिकल थ्योरी वाले जो रिलिजन को आवाम की अफीम कहते हैं, वे भी कभी इस्लाम के खिलाफ मुँह नहीं खोलते। चाहे कुछ

भी हो जाये। उन्हें सऊदी अरब में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं दिखता, तीन तलाक और हलाला में भी नारी सशक्तिकरण खोज लेते हैं... कभी सोचा है क्यों?

प्रश्न वाजिब है, उत्तर सरल...

क्योंकि किसी की तलवार और ढाल आपस में कभी नहीं लड़ती..

इस्लाम वामपंथ का स्ट्राइक आर्म है। वामपंथ के पास इतना संख्या बल कभी नहीं होगा कि वे अपने बल पर सत्ता पर कब्जा कर सकें। उनका उपद्रव मूल्य (Nuisance value) है। वे अव्यवस्था और गंदगी फैला सकते हैं। पर शक्ति के लिए वे इस्लाम की शक्ति का प्रयोग करने से परहेज नहीं करेंगे। इस्लाम के लिए भी वे उपयोगी मूर्ख हैं...इस्लाम को भी उनका उपयोग करने से परहेज नहीं है।

इस्लाम तलवार है.. फिर इनकी ढाल क्या है? वामपंथियों का पॉलीटिकल करेक्टनेस इस्लाम की ढाल है।

20 : पॉलिटिकल करेक्टनेस : मन का कैदखाना

पॉलिटिकल करेक्टनेस का उपद्रव भी इसी फ्रैंकफर्ट स्कूल की देन है। 60 के दशक में इन्हीं में से एक ने एक कॉन्सेप्ट दिया – रिप्रेसिव टॉलरेन्स। इसे कुछ ऐसे परिभाषित किया गया कि समाज को स्थापित मूल्यों के प्रति असहिष्णु होना चाहिए और वैकल्पिक मूल्यों के लिए सहिष्णु होना चाहिए। यानि परंपरागत सामाजिक मूल्यों पर प्रहार जारी रखा जाए और इनके सुझाये मूल्यों के विरुद्ध कुछ भी बोलने की स्वतंत्रता नहीं हो। लगभग उसी समय माओ ने चीन में सिद्धांत दिया कि समाज में सिर्फ मार्क्सवाद द्वारा प्रमाणित 'वैज्ञानिक' जीवन मूल्यों को ही मान्यता दी जाए।

इस तरह से इन वामियों ने अपने चुने हुए कुछ मुहावरे समाज पर स्थापित कर दिए, और उनके विरुद्ध कुछ भी बोलना असहिष्णुता गिना जाने लगा। ये वैकल्पिक वामपंथी सिद्धांत 'पॉलिटिकली करेक्ट' सिद्धांत गिने गए...इनके विरुद्ध कुछ भी बोलना सोचना संभव नहीं रह गया। नंगापन और यौन उच्छृंखलता नारीवाद के पीछे छुप गया, इस्लामिक आतंकवाद सेक्युलरिज्म और सर्व-धर्म सम्मान के पीछे छुप गया, कामचोरी और निकम्मापन समानता की माँग के पीछे छुप गया, अनुशासनहीनता और आपराधिक मनोवृति सामाजिक भेदभाव के विरोध के पीछे जाकर छुप गया। स्कूलों में खूब एग्रेसिव तरीके से इनकी 'पॉलिटिकली करेक्ट' सोच को घुसा दिया गया। ये किसी के भी विरुद्ध, किसी भी स्थापित मूल्य के विरुद्ध कुछ भी अनर्गल बोल सकते हैं...वह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है...आप उनके किसी भी असामाजिक, कुसांस्कृतिक, यहाँ तक कि देशद्रोही गतिविधि के विरुद्ध कुछ भी नहीं बोल सकते...आप उनके किसी ना किसी सिद्धांत को तोड़ रहे हैं, किसी 'पॉलिटिकली करेक्ट' सीमा रेखा का उल्लंघन कर रहे हैं...कहीं स्त्री के सम्मान का हनन हो रहा है, कहीं निजता के

अधिकार का तो कहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का। वे लोकतांत्रिक मूल्यों का हवाला भी देते हैं...अगली ही साँस में लोकतांत्रिक तरीके से चुने हुए एक प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति को अपशब्द कहकर अभिव्यक्ति वाली दीवाल के पीछे छुप जाते हैं। उनका हर योद्धा किसी ना किसी पॉलिटिकल करेक्टनेस की आड़ लेकर बैठा है...

हमारी समस्या यह है कि हम अक्सर अपने विमर्श में इन्हीं पॉलिटिकली करेक्ट मूल्यों को मान्यता दिए बैठे हैं। बिना यह समझे कि ये सारे शब्द जिनकी महत्ता और मर्यादा की दुहाई देते हुए हम आपस में लड़ते हैं, वे सभी किसी ना किसी देशविरोधी, धर्मविरोधी या समाजविरोधी शक्ति की ढाल हैं। एक देशद्रोही चैनल मीडिया की स्वतंत्रता के पीछे छुपा है, एक समाजविरोधी फिल्मकार कलात्मकता की स्वतंत्रता के पीछे, दो नंबर के पैसे को सफेद करने वाला एक दलाल समाजसेवा के पीछे छुपा है, तो नक्सलियों और जिहादियों की फौज धर्मनिरपेक्षता की ओट लिए खड़ी है...

सॉल अलिन्सकी के 'रूल्स फॉर रेडिकल्स' का पहला नियम है – शक्ति सिर्फ वह नहीं है जो आपके पास है...शक्ति वह भी है जो शत्रु समझता है कि आपके पास है। तो ये नियम सिर्फ वामपंथी ही इस्तेमाल करें जरूरी नहीं है...हमें भी समझने चाहिए। हमने इन वामियों को सामाजिक विमर्श की भाषा निर्धारित करने की शक्ति दे दी है, जो उनके पास वास्तव में नहीं है। यह शक्ति उनकी है, ऐसा सोचने से ही यह शक्ति उन्हें मिली है...हम जब वापस छीन लेंगे, नहीं रहेगी।

इन वामियों से इनकी शक्ति छीन लीजिये। इनका पॉलिटिकल करेक्टनेस का किला ढहा दीजिये...ये खुले में खड़े होंगे... नहीं, हम आपके बनाये हुए झूठे मानकों को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता गई तेल लेने.. .कलात्मक सम्प्रेषण दो पैसे की चीज नहीं है...किसने कहा कि सभी धर्मों को समान अधिकार हैं? संविधान ने? संविधान सौ दफा संशोधित हो चुका है... उसकी क्या औकात है? संविधान देश चलाने के लिए बनाया गया है...देश इस

संविधान को खपाने के लिए नहीं है। नारीवाद क्या होता है? यह देश सीता और सावित्री जैसी नारियों की पूजा करता है, किसी वाद के बहाने से ताड़काएँ और पूतनाएँ सीताओं–सावित्रीयों की बराबरी नहीं कर सकतीं।

खुल कर प्रश्न कीजिये... पॉलिटिकल करेक्टनेस के हर मानक को अस्वीकार कीजिये...वह एक सिद्धांत नहीं है, शत्रु का बंकर है? वह टूटा तो शत्रु सामने होगा...और शस्त्र के नाम पर उसके पास अकेला शस्त्रसज्जित इस्लाम है...बिना पॉलिटिकल करेक्टनेस को अस्वीकृत और अनधिकृत किये यह लड़ाई नहीं जीती जा सकती। पॉलिटिकल करेक्टनेस एक किस्म का बौद्धिक आतंकवाद है.. और इसका उस बंदूक वाले आतंकवाद से बड़ा नजदीकी भाईचारा है...

21 : कोई बनता ही क्यों है वामपंथी ?

मेरे बेटे का एक मित्र अक्सर उसके साथ घर आता था। अफ्रीकी मूल का मुस्लिम बच्चा, सिर्फ माँ के साथ रहता था। उसके माता-पिता अलग हो गए थे।

उस बच्चे में एक अजीब-सी बेचैनी थी अपने आप को दूसरों से बेहतर सिद्ध करने की। अक्सर वह क्लास में दूसरों को बताता था कि वह कुछ ऐसा पढ़ रहा है जो दूसरे नहीं पढ़ या समझ सकते। वह मैथ्स की ऊँची क्लास की किताबें लेकर बैठता था, जिससे सबको लगे कि वह बहुत इंटेलीजेंट है। पर इस दिखावे का नतीजा यह हुआ कि वह अपनी पढ़ाई में पिछड़ता चला गया। पहले उसे मार्क्स खराब आने शुरू हुए, फिर धीरे-धीरे हर विषय में फेल होने लगा।

जब स्थिति उसके हाथ से बाहर होने लगी तो उसने पढ़ाई में सबसे विशिष्ट होने का स्वांग छोड़ दिया। पर तब उसे एक नया शौक चढ़ा, सबको यह दिखाने का कि उसके पास बहुत पैसे हैं। हालाँकि उसकी माँ किसी तरह सोशल सपोर्ट के भरोसे थी, उसके पास ज्यादा पैसे होने का कोई कारण नहीं था। पर वह बहुत ज्यादा पैसे खर्च करने लगा, सारे दोस्तों के लिए खाने पीने की चीजें खरीदने लगा। बच्चे कई मामलों में बेहद निर्मम होते हैं। सभी बच्चों ने उसकी यह कमजोरी पकड़ ली और उससे अनाप-शनाप खर्च करवाने लगे। पर इससे भी उसे ऐसा कोई विशेष अटेंशन नहीं मिला जिसकी उसे उम्मीद थी।

बच्चे धीरे-धीरे बड़े होकर स्कूल से निकल गए। तभी एक दिन बी.बी.सी. की वेबसाइट पर मेरे बेटे को उसका एक इंटरव्यू दिखाई दिया। उसमें उसने बताया कि कैसे उसका बचपन अभावों में गुजरा। कैसे उसे अश्वेत होने की वजह से दुर्व्यवहार और भेदभाव का शिकार होना पड़ा था। कैसे वह गलत संगत में पड़ कर गैंग्स में शामिल हो गया था, ड्रग्स वगैरह लेने लगा था, और अब वह सुधर गया है और अन्य अश्वेत और गरीब बच्चों के जीवन में सुधार के लिए काम कर रहा है। हालाँकि वह सिर्फ 17 साल का है, पर उसने पढ़ाई छोड़

दी है और आजकल यही सब करता है। टीवी पर आता है, और वामपंथी गैंग उसे एक विक्टिम और एक मसीहा के रोल में उतारने के लिए तैयार कर रहा है।

मेरा बेटा यह इंटरव्यू पढ़ कर जोर जोर से हँसने लगा। उसने बताया कि इस इंटरव्यू में लिखी हुई सारी बातें मनगढंत हैं। वह किसी गैंग वगैरह में नहीं था, बल्कि आखिर तक मेरे बेटे की फ्रेंड सर्किल में ही घूमता था। उसके साथ कोई भेदभाव या दुर्व्यवहार नहीं होता था, हाँ पीठ पीछे सब उसकी बेवकूफियों पर हँसते थे। पर अब यह कहानी उसके लिए बीबीसी की वेबसाइट और टीवी पर आने के लिए एक अच्छी कहानी थी और यह कहानी उसकी पर्सनालिटी से मेल खाती थी।

उसकी एक मनोवैज्ञानिक जरूरत थी दूसरों से सुपीरियर महसूस करने की। पहले वह पढ़ाई में सबसे बेहतर होने का दावा रखता था। जब लगातार खराब ग्रेड्स से वह दावा फुस्स हो गया तो उसने अपने पास सबसे ज्यादा पैसे होने का दिखावा करना शुरू किया। पर बच्चों ने उससे प्रभावित होने के बजाय उसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया तो यह भी ज्यादा दिन नहीं चला। अब उसका नया दावा है नैतिक श्रेष्ठता का। उसे विक्टिम बनने में, और अन्य विक्टिम के साथ खड़े होने में यह महसूस होता है कि वह नैतिक रूप से दूसरों से बेहतर है और इसका कोई मानक, कोई मापदंड भी नहीं है। इंटेलिजेंस स्कूल में पता चल जाता है, पैसे गिने जा सकते हैं और खर्च हो जाते हैं। यह मोरल सुपेरिओरिटी वह करेंसी है जो खत्म नहीं होती। आप जितनी चाहिए उतनी मोरल सुपेरिओरिटी क्लेम कर सकते हैं।

हीन भावना से ग्रस्त युवाओं के लिए यह क्लेम बहुत बड़ा एक लालच है और वामपंथ उन्हें इसके लिए खुशी-खुशी एक प्लेटफार्म उपलब्ध कराता है।

अक्सर सोचता हूँ, कोई वामपंथी कैसे बन जाता है?

वामपंथी होना किसी के सामाजिक आर्थिक वर्ग-विभाजन पर उतना निर्भर नहीं है जितना उसके व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रोफाइल पर निर्भर है। हमने उच्च वर्ग

के संपन्न वामपंथी लाखों की संख्या में देखे हैं। दलित-पिछड़े-आदिवासी की पूरी गुटबंदी के बावजूद पूरा वामपंथी आंदोलन मूलतः ब्राह्मणों के नेतृत्व में खड़ा हुआ है।

मेरा एक ओवर-जेनेरलाइजेशन है...साइकोलॉजिकल प्रोफाइलिंग में तीन तरह के लोग वामपंथी बनते हैं - पहले कम आई क्यू वाले लोग, जिन्हें वामपंथ पढ़ा समझा दिया जाता है।

दूसरे घोर हीन भावना से ग्रस्त लोग, जिन्हें कुछ सिद्ध करना है...जिन्हें किसी भी तरह से किसी का नेतृत्व करना है और उन सबको दिखा देना है जो उन्हें बचपन से लोढ़ समझते थे।

और तीसरे बदसूरत, दुनिया से नकारे गए शारीरिक रूप से विकृत लोग...आप अक्सर वामपंथियों की भीड़ में मरियल लिकलिक पंचफूटिये लड़कों और बदसूरत लड़कियों को पाएँगे....दुनिया और प्रकृति से नाराज लोग, जो बदले में दुनिया को बदसूरत और विकृत बना देना चाहते हैं।

दो दिनों पहले पिछली सदी के एक मूर्धन्य और प्रखर वामपंथी के जीवन के बारे में पढ़ रहा था - अंतोनियो ग्राम्स्की। पहला वामपंथी दिखाई दिया जिसके सामाजिक ऑब्जरवेशन से सहमत हुए बिना नहीं रह सका। उसके Hegemony के सिद्धांत ने वामपंथी दर्शन और रणनीति को विशेष रूप से और पूरी दुनिया को सामान्यतः बदल डाला। मुसोलिनी के इटली में हुआ यह व्यक्ति वर्षों जेल में डाल दिया गया और वहाँ से निकलने के कुछ दिनों बाद मर गया। जेल में ही प्रिजन-नोटबुक्स नाम से उसने अपना पूरा लेखन किया और जो बाद में पूरी दुनिया को संक्रमित कर गया।

उसके जीवन के एक पक्ष ने विशेष रूप से मेरा ध्यान खींचा...वह पाँच फुट का और कुबड़ा था। ब्रिलियंट मस्तिष्क, पर एक कुरूप विकृत शरीर में। इसे हर विकलांग या विकृत व्यक्ति के संदर्भ में कृपया ना लिया जाए...पर विकलांगता और विकृति सेल्फ इमेज और आत्म-सम्मान को भी विकृत कर ही सकती है।

ग्राम्स्की का व्यक्तित्व भी इस विकृति का शिकार हो गया हो तो आश्चर्य नहीं।

इस पूरे प्रसंग से मुझे दो बातें समझ में आती हैं – ग्राम्स्की को जेल में डालना काफी नहीं था। मुसोलिनी को ग्राम्स्की को गोली मार देनी चाहिए थी...

और दूसरा, अपने बच्चे को ज्यादा मारें पीटे नहीं...उनकी तारीफ करें, उत्साहवर्धन करें....उनका आत्मसम्मान बनाये रखें....नहीं तो बड़े होकर वो वामपंथी हो जाएँगे...

22 : गरीबी का सफल बिजनेस है वामपंथ

मेरा एक इटालियन मित्र है। प्रोफेशनल म्यूजिशियन है...और जैसे कि म्यूजिक की दुनिया के ज्यादा लोग होते हैं, लिबरल है। वैसे है भला आदमी। वामपंथी नहीं है, पर वामपंथ लोगों के भले होने का फायदा उठाकर उन्हें जो अपना एजेंडा बेच देता है उसका शिकार है।

कल सुना, वह एल्विस प्रिस्ले के बारे में कुछ बता रहा था...कि 50 के दशक में जब एल्विस प्रिस्ले का संगीत पहली बार आया तो हंगामा मच गया। लोगों को झटका लगा क्योंकि उसके संगीत में कैरेबियन ब्लैक लोगों के संगीत की झलक थी...और वह जमाना अमेरिका में सेग्रिगेशन का था...यानि ब्लैक और गोरे लोग एक मोहल्ले में नहीं रह सकते थे...एक बस में, एक ट्रेन के डब्बे में नहीं चल सकते थे...गोरों के पब में, रेस्टॉरेंट में ब्लैक नहीं जा सकते थे...

मैंने पूछा - अच्छा, तुमने सेग्रेगेशन की बात की है तो यह बताओ, अमेरिकी राजनीति में कौन-सी पार्टी सेग्रेगेशन का समर्थन करती थी? रिपब्लिकन या डेमोक्रैट?

उसने कहा - मेरा गेस है, रिपब्लिकन होंगे...क्योंकि वे ही राइट विंग समझे जाते हैं...

- गलत! डेमोक्रेट्स सेग्रेगेशन का समर्थन करते थे...टेक्सास, जहाँ सेग्रेगेशन सबसे ज्यादा था, वहाँ का गवर्नर भी डेमोक्रैट था।

अच्छा, जब दासप्रथा को खत्म करने के लिए अमेरिका में गृहयुद्ध हुआ था तो उस समय दासता के समर्थन में कौन था और विरोध में कौन था?

- कौन? क्या रिपब्लिकन दासता के समर्थक नहीं थे?

- नहीं! दासता के विरुद्ध युद्ध छेड़ने वाले अब्राहम लिंकन रिपब्लिकन थे।

- अच्छा, इटली के सबसे प्रसिद्ध सोशलिस्ट नेता कौन हुआ है?

इसका जवाब उसे पता था – मुसोलिनी। चालू प्रचार के विपरीत, मुसोलिनी राइट विंग नहीं, लेफ्ट विंग का था...सोशलिस्ट था।

यह वामपंथियों के प्रचार की कमाल की सफलता है कि उन्होंने अपने पापों का ठीकरा कितनी चालाकी से दक्षिणपंथियों के सर पर फोड़ रखा है...

– अच्छा, यह बताओ...दुनिया का पहला सोशलिस्ट स्टेट कौन–सा था जहाँ गरीबों को मुफ्त में घर मिलता था, मुफ्त खाना मिलता था, मुफ्त उनके लिए दूर दराज से 24 घंटे साफ पानी की सप्लाई होती थी...और तो और, मुफ्त मनोरंजन की व्यवस्था थी ?

इसका जवाब भी उसे पता था – रोमन एम्पायर में, हमेशा से...सीजर, ऑगस्टस, नीरो के पहले से लोगों के लिए फ्री हाउसिंग, फ्री ब्रेड की व्यवस्था थी...उनके लिए अक्वेडक्ट से पानी आता था, उनके लिए सर्कस में गुलाम ग्लैडिएटर लड़ते थे...

बहुत अच्छा...पर यह आता कहाँ से था?

– दूर दूर तक फैले हुए रोमन एम्पायर पर टैक्स लगा कर आता था...वहीं से गुलाम आते थे...अफ्रीका से पकड़ कर शेर और चीते लाये जाते थे, जिनसे गुलाम सर्कस में लड़ते थे...यानि किसी और की मेहनत पर, किसी और के शोषण की कीमत पर यह महान सोशलिस्ट एक्सपेरिमेंट होता था...जिससे रोम में बैठे गरीब शान्त रहें, वे विद्रोह ना करें...

अगर आपको बहुत आश्चर्य हो रहा हो समाजवाद की इस व्याख्या पर, तो इसे फिर से और साफ–साफ समझें... समाजवाद समाज में सत्ता वर्ग का वर्चस्व बना और बचा के रखने का औजार भर है। गरीबों को मुफ्त की सुविधाएँ देने के नाम पर समाज के मेहनती वर्ग को नोचो, चूसो, उसे गरीब रखो। मेहनत करने वाले कामगार, व्यापारी, उद्यमी से छीनो और गरीब में बाँटो...और दोनों को हमेशा गरीब रखो। क्योंकि शासक को खतरा इसी मेहनती वर्ग से है कि कहीं अपनी

संपन्नता और प्रभाव में यह शासक वर्ग की बराबरी ना करने लगे। कामचोर गरीब को उसकी गरीबी में संतुष्ट रखो, और मेहनती को भी गरीब रखो...और दोनों को एक दूसरे से लड़ा कर रखो, जिससे आपका शासन सुरक्षित रहे।

सच तो यह है कि गरीब को शासन की मदद नहीं चाहिए। गरीब को अपना व्यापार धंधा करने की आजादी चाहिए...वह अपना ख्याल रख लेगा। और दुनिया में पिछले 50 वर्षों में जो भी प्रमुख राइट विंग राजनेता हुए हैं जिन्होंने अपने देशों की अर्थव्यवस्था को खोला है और गरीबों को सरकारी मदद के बजाय प्रगति के अवसर दिए हैं...जिन्हें वामपंथी अमीरों के एजेंट कहते हैं...वे सभी सामान्य या गरीब परिवारों से हुए हैं...रीगन का बाप अल्कोहॉलिक था, रीगन को 16 साल की उम्र से काम करके अपनी पढ़ाई करनी पड़ी। मैग्गी थैचर एक छोटे दुकानदार की बेटी थी। निक्सन एक मामूली दुकानदार का बेटा था...इन्हें पता था कि मेहनती निम्नवर्ग की क्षमता क्या है...

वहीं दुनिया में जो भी बड़े जनकल्याणकारी सोशलिस्ट विचारधारा के नेता हुए वे सभी बहुत पैसे वाले घरों से हुए। पूरे यूरोप के सारे कम्युनिष्ट विचारक बेहद अमीर यहूदी थे। अमेरिका में चाहे रूजवेल्ट हो, चाहे कैनेडी या क्लिंटन...सारे सोशलिस्ट नेता बेहद पैसे वाले परिवारों से हुए...इन्हें गरीबों का भला करने की बहुत हुड़क होती है...क्योंकि इन्हें गरीबों का भला कोई अपने बाप-दादों की संपत्ति बेच के थोड़े करना है? मेहनत करने वाले उद्यमियों और व्यापारियों से बेतहाशा टैक्स वसूल के करना है...जिससे गरीब गरीबी में संतुष्ट रहे और कोई मेहनत करके अमीर बनने के सपने भी ना देखे...

सोशलिज्म की सबसे सटीक परिभाषा है - सोशलिज्म गरीबों के लिए नहीं, गरीबी के लिए बनाई हुई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था है।

उसी इटालियन मित्र ने बताया...इटली में कम्युनिष्टों की बहुत मजबूत परंपरा रही है। एंटोनियो ग्राम्स्की तो खैर एक कम्युनिष्ट आइकॉन ही है। कम्युनिष्ट रशियन

ब्लॉक से बाहर इटली की कम्युनिष्ट पार्टी पश्चिमी यूरोप में सबसे बड़ी थी। 90 के दशक में कभी यह चुनकर सत्ता में भी आई थी।

मैंने पूछा, ऐसा कैसे हुआ कि यूरोप में रह कर भी इटली वालों को यह पता नहीं चल पाया कि आयरन कर्टेन के पीछे जीवन कैसा है? लोगों का कम्युनिज्म के प्रति मोह क्यों खत्म नहीं हुआ? क्या आप लोग कम्युनिज्म के अंदर जीवन कैसा होता है यह नहीं जान पाए?

उसने कहा, शायद पूरी तरह नहीं। अमेरिका में जैसे कम्युनिज्म को शत्रु बना कर पेश किया गया, उतना इटली में नहीं हुआ, क्योंकि शायद खुद मीडिया इनके ही प्रभाव में था। पर कहानियाँ सुनते थे कि कैसे उस तरफ, पूर्वी यूरोप और रूस में ब्रेड के लिए हजारों लोगों की कतार लगती थी। कैसे एक अमेरिकन जीन्स लोगों का सपना हुआ करता था।

उसकी पहली गर्लफ्रेंड मालडोवियन थी। माल्दोवा कम्युनिस्ट रूस से अलग हुआ एक देश है। वह बताती थी कि पूर्वी यूरोप में लोगों को लगता था कि पश्चिमी यूरोप कितना सम्पन्न है...मानों फुटपाथों पर सोने के सिक्के जड़े हों... पैसे तो जैसे कूड़े के डब्बे में मिलते हों। तो जब रूस टूटा तो सारे भागे पश्चिम की तरफ...

पर उसे एक तरह से बहुत निराशा भी हुई। सबकुछ बेहतर तो था...पर यह क्या? यहाँ तो हर चीज के पैसे लगते हैं। स्कूल हो या हॉस्पिटल...हर चीज के पैसे लगते हैं, कुछ भी मुफ्त नहीं है। आप काम करके पैसे कमाते तो हो, पर उसे कहीं ना कहीं खर्च कर देते हो। कभी-कभी तो मन करता है, वापस वही कम्युनिस्ट रूस का जमाना आ जाता...वहाँ कम से कम स्कूल, कॉलेज, हॉस्पिटल मुफ्त थे...जैसे भी थे, पर मुफ्त थे...हम गरीब थे, पर यह संतोष तो था कि हर कोई गरीब था...

वामपंथी स्वर्ग की यही हकीकत है। आप गरीब तो होते हैं पर इस सुख से सुखी होते हैं कि सभी गरीब हैं। आपको स्कूल और हॉस्पिटल मुफ्त मिलते हैं, आप

इसी में खुश हो...चाहे जैसे भी हैं, मुफ्त तो हैं...काम करके, पैसे कमा के आप उससे अच्छा अफोर्ड कर सकते हो पर उसकी कमी खलती है जो मुफ्त मिलता था। लोगों को निकम्मा, कामचोर, असहाय और आश्रित बना देना ही वामपंथ का सबसे बड़ा हथियार है।

23 : पूँजीवाद का परजीवी समाजवाद

बेटे ने एकदिन एक बहुत ही पॉइंट-ब्लेंक प्रश्न पूछा - पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं में कौन बेहतर है?

अब इसका सेफ उत्तर तो यह है कि दोनों व्यवस्थाओं के फायदे और नुकसान गिना दिए जाएँ और उसे उतना ही कन्फ्यूज्ड छोड़ दिया जाए। यह एप्रोच सेफ तो है, पर उपयोगी नहीं।

मैंने जड़ से शुरुआत की -

पूँजीवाद क्या है? मान लो, इस मोहल्ले में चार लोगों ने हजार हजार पौंड की पूँजी लगा के एक-एक दुकानें खोलीं। फिर उससे हुए मुनाफे को बचाकर उनमें से एक ने बाकी की दो दुकानें खरीद लीं। अब उसके पास तीन दुकानें हो गई, वह बड़ा व्यापारी हो गया और उसने एक कंपनी बना ली। दूसरा अकेला दुकानदार छोटा व्यापारी बना रहा। दोनों एक फैक्ट्री से अपना माल खरीदते हैं।

अब बड़े व्यापारी ने एक फैक्ट्री बैठा ली। अब छोटा व्यापारी उसी बड़े व्यापारी की फैक्ट्री से अपना माल खरीदने लगा।

अब उस कंपनी ने दूसरी फैक्ट्री भी खरीद ली और वह उद्योगपति बन गया। फिर वह अपनी फैक्ट्री के पुर्जे और टेक्नोलॉजी किसी और बड़ी कंपनी से खरीदने लगा जो और बड़ा उद्योगपति है।

इस तरह एक पिरामिड खड़ा हुआ जिसके बेस में उन दुकानों और फैक्टरियों में काम करने वाले कर्मचारी हैं जो अपनी सैलरी लेते हैं, और घर जाते हैं। उन्हें व्यापार के नफा नुकसान से सीधा मतलब नहीं है, पर उनका हित इसी में है कि व्यवसाय चलता रहे। उसके ऊपर छोटे व्यापारी हैं, उसके ऊपर बड़े व्यापारी और उद्योगपति हैं...यही एक मात्र तंत्र है जो प्राकृतिक है और जो काम करता है। इसके अलावा अगर कोई और वैकल्पिक तंत्र है तो वह कृत्रिम है।

उसने पूछा; यह तो बिजनेस मॉडल है। पर मेरी समस्या इससे निकलने वाला सोशल मॉडल है। जो इस बिजनेस मॉडल के शिखर पर है वह अपने धन और प्रभाव का प्रयोग राजनीतिक शक्ति को प्रभावित करने में करेगा। राजसत्ता के निर्णय इस धन शक्ति से प्रभावित होंगे..

हाँ! होंगे। धन से शक्ति आती ही है। धन के पिरामिड के शिखर पर राजनीतिक शक्ति विराजमान होती ही है। यह भी प्राकृतिक है। पर उस राजनीतिक शिखर का हित इस पिरामिड के स्थायित्व में, स्टेबिलिटी में है। इसलिए उसे इसके बेस को मजबूत और सुखी रखना चाहिए, और ऊपर से नीचे धन का संचार होते रहने देना चाहिए जिससे इसका गुरुत्व-केंद्र स्थिर रहे। यह प्राकृतिक समाज व्यवस्था है। अगर एक समाज को स्थायित्व के साथ पनपना, फलना-फूलना है तो वह इस व्यवस्था को स्वाभाविक रूप से स्वीकार करेगा।

फिर इस व्यवस्था में वामपंथी कहाँ से आते हैं और वे कौन हैं?

वामपंथी इस व्यवस्था में बीच के वे लोग हैं जो इस स्वाभाविक स्पर्धा में शिखर तक पहुँचने से रह गए. श्रम, उद्यम, संचय, निवेश की प्रक्रिया में पीछे छूट गए। ये वो उद्योगपति-व्यवसायी-पूँजीपति हैं जो अपनी क्षमता और योग्यता से ज्यादा राजनीतिक शक्ति अर्जित करना चाहते हैं। इन्होंने समझा है कि इस पारंपरिक व्यवस्था में वे शिखर तक नहीं पहुँच पाएँगे, तो उन्होंने शीर्ष तक पहुँचने के लिए इस पिरामिड पर बाहर से सीढ़ी लगाने का प्रबंध किया। महत्वाकांक्षा की इसी सीढ़ी का नाम वामपंथ है।

ये वो लोग हैं जो इस पिरामिड की व्यवस्था को चैलेंज करने के लिए इसके बेस में लगे लोगों को अपनी ओर आने का लालच देते हैं। उन्हें बिना इस पिरामिड का भाग बने शीर्ष तक पहुँचाने का आश्वासन देते हैं। उन्हें एक उल्टे पिरामिड का यूटोपिया भी दिखाते हैं। उन्हें भी पता है कि यह उल्टा पिरामिड स्थिर नहीं रहेगा। पर उनकी जिद है अगर उन्हें व्यवस्था को बाईपास करके सीढ़ी से ऊपर जाने का अवसर नहीं दिया गया तो वे इस पिरामिड को उलट देंगे, या गिरा देंगे।

इसलिए वे बेस से ईंट खिसका कर अपनी सीढ़ी बनाने में व्यस्त हैं। उनकी इंजीनियरिंग में, उनके ब्लूप्रिंट में जो उल्टा पिरामिड दिख रहा है, वह उनका उद्देश्य नहीं है। बल्कि एक अस्थिर पिरामिड के ध्वंस पर बैठना ही उनका उद्देश्य हैं। उन्हें महल नहीं बनाने, वे मलबे के मालिक बन कर ही खुश हैं।

पहले उन्होंने इसके बेस से ईंटें खींचने की कोशिश की। जिसे मजदूर और किसान आंदोलन का नाम दिया। पर इसमें उन्हें ज्यादा ईंटें खिसकानी पड़तीं। तो उन्होंने इस पिरामिड की संरचना का अध्ययन किया कि कहाँ-कहाँ से ईंटें खिसकाने से पिरामिड ज्यादा अस्थिर होगा। उन्होंने इसमें शिक्षा, इतिहास, धर्म, परिवार की ईंटें खिसकानी शुरू कीं और उनके बदले अपनी कागजी ईंटें लगा दीं, जिससे कि संरचना के स्थिर रहने का भ्रम बना रहे। और जब यह पिरामिड गिरे और उस ध्वंस के शिखर पर चढ़कर वे बैठें तो उन्हें अपने नीचे मजदूरों, किसानों, कामगारों का वह आधार अभी भी चाहिए जो इस भग्नावशेष के बेसमेंट में पड़ा, दबा कुचला जाता रहेगा।

वामपंथी नेतृत्व की रुचि आज किसानों, मजदूरों के आंदोलन में समाप्त हो गई है। क्योंकि उन्हें अपनी परजीविता के लिए यह पूँजीवादी इंफ्रास्ट्रक्चर जीवित चाहिए। अगर इसे पूरी तरह नष्ट कर दिया तो ये परजीवी वामपंथी कैसे सर्वाइव करेंगे। एक पैरासाइट के हित में अपने होस्ट को मारना नहीं है। उसका हित इसी में है कि होस्ट बीमार पर जीवित रहे। इसलिए आज वामपंथी आंदोलन पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध नहीं खड़ा है।

समाज की मूल संरचना का आर्थिक आधार पूँजीवाद ही है। पर एक स्वस्थ पूँजीवाद वह है जिसका आधार मजबूत और संपन्न हो, और उसमें वामपंथी समाजवादी पैरासाइट नहीं हों।

24: कामचोर दीमक वामपंथी

नाईट ड्यूटी में साथ में एक जूनियर था... निहायत कामचोर. उसे हर थोड़ी देर पर खोंचा मारना होता था नहीं तो दो दो घंटे तक एक ही मरीज में लगा रहता। उसे कई बार टोका, भाई डॉक्यूमेंटेशन ठीक से किया करो, पूरी डायग्नोसिस लिखा करो, ड्रग चार्ट पूरा करो...इतनी देर किस बात की लग रही है?

फिर मैंने उसे बिठा कर पूछा, भाई तेरी प्रॉब्लम क्या है? तेरे से काम हो नहीं रहा या तू करना नहीं चाहता?

उसने जो जवाब दिया वह सुन कर मैं दंग रह गया...लगा ही नहीं की एक डॉक्टर से बात कर रहा हूँ या दिहाड़ी के मजदूर से...

कहता है...मैं ज्यादा मरीज देखूँगा, ज्यादा काम करूँगा तो हॉस्पिटल को पैसे मिलेंगे...मुझे क्या मिलेगा? मेरे लिए इसमें क्या इंसेंटिव है?

मैंने कहा - तेरी सैलरी मिलती है, वह किस बात की मिलती है?

बेशर्मों की तरह हँसते हुए कहता है...वह तो ऐसे भी मिलती है...

मैंने कहा - अबे कार्ल मार्क्स के नाती...अगर तू काम नहीं करेगा तो थोड़े ना हॉस्पिटल का चीफ एग्जीक्यूटिव आकर काम करेगा, या जेरेमी हंट आकर करेगा? तू नहीं करेगा तो मुझे करना पड़ेगा...तो तू या तो काम कर ले या बेइज्जत हो ले...तेरी मर्जी...

वे कौन से लोग होते हैं जो इस तरह एक व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए इसे दीमक की तरह कुतरने में लगे होते हैं? अक्सर कम्युनिस्ट, ट्रेड यूनियन वाले होते हैं...गरीबों के दु:ख से पिघले हुए, लाल झंडे टाइप लोग...पर यह उन जैसा नहीं था...इसे मैंने कभी टिपिकल लिबरल टाइप सोशलिस्ट बातें करते नहीं सुना था...पर व्यवस्था के प्रति इस कुंठित हिंसा का सोर्स क्या था? वह कौन-सा वर्ग है जो जानबूझ कर समाज व्यवस्था को जहाँ से हो सके क्षति करने के प्रयास में

लगा है? हर नियम कानून को जहाँ से हो सके तोड़ने में सुख लेता है... सोशल वेलफेयर के हर अवसर पर नजर गड़ाए परजीवी बन कर पनप रहा है? यहाँ तो आरक्षण नहीं है...बंदा डॉक्टर बना है तो मेरिट से ही बना है...पैसे की शिकायत भी नहीं है....फिर उसकी कुंठा का स्रोत क्या है? यह सिर्फ आलस्य नहीं है, एक सक्रिय द्रोह भाव है...देश और समाज को नुक्सान पहुँचाने की वृति है।

25 : वामपंथियों का निशाना, आप के बच्चे

बच्चे सपने देखते हैं, सपनों पर भरोसा करते हैं, सपनों को जीने के सपने देखते हैं...उन्हें सपने बेचना आसान होता है। बल्कि उन्हें कुछ भी बेचना हो तो सपनों में लपेट कर बेचा जाता है।

कुछ दिनों पहले बेटे से उसके कैरियर ऑप्शन्स पर बात कर रहा था। उसने कहा – हमें जॉब करने की जरूरत क्यों पड़ती है? होना तो यह चाहिए कि आदमी अपने काम को एन्जॉय करे...पैसे उसको यूँ ही मिलें, काम को सिर्फ क्रिएटिविटी या काम के महत्व के हिसाब से किया जाए...

फिर उसने बताया...कुछ लोग गारंटीड नेशनल इनकम की बात करते हैं। हर व्यक्ति को एक न्यूनतम पैसा मिले। काम करना ऑप्शनल हो, जिन्हें काम पसंद है वे यूँ भी करेंगे...जैसे कि तुम। इससे क्रिएटिविटी और प्रोडक्टिविटी बढ़ेगी।

यूटोपिया है, बच्चे यूटोपिया खरीदते हैं। यह सशस्त्र क्रांति के कम्युनिज्म और समानता के यूटोपिया से बेहतर है। खतरे से मुक्त, शान्तिपूर्ण...बेहतर बिकता है।

यह गारंटीड नेशनल इनकम का यूटोपिया कहाँ से आया?

अमेरिका में क्लोवर्ड और पिवेन नाम के वामपंथी पति-पत्नी हुए...प्रकाश और वृंदा करात टाइप...जिन्होंने 1966 में एक अखबार में अपने कॉमरेड बंधुओं को संबोधित करते हुए एक लेख लिखा। उन्होंने कहा कि अगर हम स्टेट वेलफेयर सिस्टम पर ज्यादा से ज्यादा लोगों को जोड़ दें तो देश इसका बोझ नहीं उठा पायेगा और इकॉनमी ध्वस्त हो जाएगी। तो उन्होंने अपने कॉमरेड साथियों को सलाह दी कि वे उस हर व्यक्ति को, जो स्टेट वेलफेयर से पैसा लेने की पात्रता रखता है (गरीबी की रेखा से नीचे है) वेलफेयर रजिस्टर से जोड़ दें। तो कॉमरेडों ने अमेरिका में जा जा कर लोगों को अपना काम छोड़कर बेरोजगारी भत्ता माँगने

को प्रेरित किया। उस लेख का निष्कर्ष है कि ऐसा करने से सरकारों पर गारंटीड नेशनल इनकम लागू करने का दबाव बनाया जा सकेगा और इसका उद्देश्य है आर्थिक अराजकता...क्योंकि वामपंथी अराजकता में सत्ता का रास्ता खोजते हैं। इस स्ट्रेटेजी को क्लोवर्ड-पिवेन स्ट्रेटेजी कहा गया और गारंटीड नेशनल इनकम की माँग इसी से निकली है।

क्लोवर्ड-पिवेन का नाम मैंने अभी-अभी ही सुना। पर उनका फैलाया हुआ जाल मेरे बच्चे तक पहले ही पहुँच गया। एक यूटोपिया के मखमली रैपर में लिपटा हुआ।

क्लासिकल मार्क्सवाद का निशाना मजदूर थे। सांस्कृतिक मार्क्सवाद का निशाना बच्चे हैं।

एक और उदाहरण दूँगा - दो साल पहले बच्चों के स्कूल में गया था। स्कूल का एनुअल फंक्शन था। चीफ गेस्ट एक विचित्र-सी दिखने वाली महिला थी। बाल एक किनारे से छोटे छोटे कटे हुए थे। गले में अजीब अजीब सा बड़ा-सा नेकलेस था, हाथ में विचित्र से ब्रेसलेट. फंक्शन के अंत में उस महिला का परिचय दिया गया...उसने कहीं से पीएचडी किया था, और एक एनजीओ चलाती थी। कुल मिला कर उनकी सबसे बड़ी तारीफ यह थी कि वह लेस्बियन थी और गे और लेस्बियन लोगों के अधिकारों के लिए एनजीओ चलाती थी। उसके पीएचडी को भी इस तरह से प्रस्तुत किया गया कि जैसे उसमें भी उसके लेस्बियन होने का योगदान था। उसने अपने भाषण में बताया कि लेस्बियन होने की वजह से उसे कितनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है और लेस्बियन होना उसकी कितनी बड़ी उपलब्धि है।

यह सब बेटे से डिस्कस किया...उसे आगाह करने का प्रयास किया कि कैसे उन्हें अपना एजेंडा पूरा करने के लिए टारगेट किया जा रहा है। उसे विश्वास नहीं हुआ... उसने पूछा - आखिर इसमें किसी का क्या फायदा है? कोई आखिर अपने देश की इकॉनमी को क्यों बर्बाद करना चाहेगा? किसी को किसी देश में

संघर्ष और अव्यवस्था फैला कर क्या मिलेगा?

मैंने कहा...यही पॉवर है। जितनी अव्यवस्था होगी, जितने ज्यादा लोग विक्टिम आइडेंटिटी से बँधे होंगे, ये लोग उतने ज्यादा लोगों के प्रवक्ता होंगे। उतने ज्यादा लोग उनके पीछे खड़े होंगे। ये उतने ज्यादा शक्तिशाली होंगे। यह एक तरह का सॉफ्ट पॉवर है।

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

एक वीकेंड पर काम पर था। दुर्भाग्य से मेरा जूनियर नहीं आया। जिसकी ड्यूटी थी उसने छुट्टी ले ली...दूसरा कोई मिला नहीं. एक मैं, और मेरा एक इंटर्न, जिसका कुल एक्सपीरियंस 4 महीने का।

यहाँ वीकेंड पर वार्ड में रिव्यू करने के लिए मरीजों की एक लिस्ट होती है। हर वार्ड उसमें अपने सीरियस मरीज के नाम डाल देता है। लिस्ट देखी तो कुल 106 मरीज। एक शिफ्ट में आदमी इतने मरीज कैसे देख सकता है? ऊपर से जो क्रैश कॉल्स हैं वे अलग से, और सिर्फ मरीज देखना ही नहीं है...डॉक्यूमेंटेशन भी पूरा होना चाहिए...रोज रोज नए नए रेगुलेशन आते जाते हैं। हर रेगुलेशन मरीज की सेफ्टी के नाम पर आता है और वह काम करने को बिल्कुल असंभव बना देता है।

लिस्ट के 106 मरीज कहाँ से आये? कोई रिस्क नहीं लेना चाहता। लोगों ने अपने आधे वार्ड को लिस्ट पर डाल दिया था कि मरीज बिगड़े तो जिम्मेदारी किसी और की हो। यानि ऐसी एक सिक-लिस्ट का कोई मतलब ही नहीं रह गया।

जुडिशियल एक्टिविज्म भी कुछ ऐसा ही है। यह लीगल क्लोवर्ड-पिवेन स्ट्रेटेजी है। इतने नियम बना दो की उन्हें पालन करना असंभव हो जाये और व्यवस्था काम ही ना कर सके। तो हमारे मीलोर्ड लोग जो कूद कूद कर हर बात में घुसते हैं...हमेशा उसके पीछे एक नेक मिशन का हवाला देते हैं...मेरे केस में मरीजों की सुरक्षा का, तो कभी पर्यावरण का तो कभी इसके अधिकार का तो उसके

अधिकार का...और लोगों को कानून के डर से कुछ ऐसे बर्ताव करने पर मजबूर कर देते हैं कि व्यवस्था को पैरालिसिस हो जाये...यही इनका मूल उद्देश्य है, यही नीयत है...और जैसा कि मैंने कहा था – वामपंथी को सिर्फ उसकी नीयत से ही पहचाना जा सकता है।

26 : कफन के सौदागर

पटना मेडिकल कॉलेज हस्पताल के बाहर के दो दृश्य हैं जो देश के किसी भी सरकारी हस्पताल को परिभाषित करते हैं। पहला तो उसके सामने ढेर सारी दवा की दुकानें हैं। अशोक राजपथ से होते हुए पूरे मखनिया कुआँ रोड में सिर्फ दवा की दुकानें थीं। अभी क्या हाल है पता नहीं।

और दूसरा, हस्पताल के गेट पर कई लोग लकड़ी और कफन बेचते थे। यह दृश्य मैंने सिर्फ वहीं देखा।

इतनी दवा की दुकानें थीं तो क्या रोग खत्म हो गए? क्या लोग स्वस्थ हो गए? क्या उन्हें हस्पताल में सही इलाज मिलता है? क्या वहाँ साफ सफाई है?

नहीं है, बेशक नहीं है। फिर भी मरीज बीमार पड़ता है तो इलाज खोजता है। ज्यादातर लोग इलाज से ठीक ही होते हैं। कई मर भी जाते हैं। कई सही इलाज ना मिलने और साधन की कमी से भी मर जाते हैं। फिर भी हस्पताल का पॉइन्ट तो यही है कि इलाज किया जाए। इलाज का प्रयास किया जाए।

पर इस प्रश्न पर एक टिपिकल वामपंथी सोच क्या होगी?

क्या इलाज से लोग ठीक हो गए? क्या लोग बीमार पड़ने बन्द हो गए? क्या यहाँ इलाज सही होता है? क्या फायदा इस हस्पताल का। बन्द कर दो इसे...तोड़ दो, जला दो...

जब आप हस्पताल के गेट पर खड़े होकर यह आक्रोश व्यक्त करेंगे तो सही है कि बहुत से लोगों के संचित अक्रोश को स्वर मिलेगा। बहुत से लोग इस सेंटीमेंट से सहमत भी हो जाएँगे। पर इस आक्रोश से एक भी मरीज का इलाज नहीं होगा। एक भी मरीज स्वस्थ नहीं होगा। हाँ, जिसको जो भी मिल रहा है वह भी नहीं मिलेगा।

पर समस्या के प्रति वामपंथी एप्रोच यही है। किसी भी समस्या के प्रति वामपंथी

मरीज को कहेंगे कि निमोनिया के लिए एंटीबायोटिक मत खाओ...यह तुम्हारी बीमारी का जड़ से इलाज नहीं है। और दवाईयाँ मल्टीनेशनल कंपनियाँ बनाती हैं जिसका मुनाफा पूँजीपति लेकर जाते हैं और तुम गरीब ही रह जाते हो जिसकी वजह से तुम बीमार पड़ते हो...

निमोनिया के इलाज के लिए तो कोई उनकी नहीं सुनता, पर सामाजिक समस्याओं के प्रति उनके इस एप्रोच के कई खरीददार मिल जाते हैं, कई सेल्समेन भी...

क्यों करते हैं वामपंथी ऐसा? क्या मिलता है उन्हें? क्यों करते हैं वे संघर्षों और त्रासदियों की खेती? क्यों चाहते हैं वे कि हस्पताल बन्द हो जाये और मरीज मर जाये?

आपको याद दिला दूँ, पीएमसीएच के गेट पर उस कफन और लकड़ी के दुकान की। समझ लें, वह दुकान वामपंथियों की है...कफन के सौदागर हैं वामपंथी।

27 : हर बीमारी की जड़

मेरे पास एक मरीज आता है खाँसी, सीने में दर्द और बुखार लेकर...उसे कहता हूँ कि निमोनिया है, फेफड़े में इन्फेक्शन है। दूसरा आता है पेशाब में जलन, बुखार लेकर। उसे कहता हूँ कि यूटीआई, पेशाब में इन्फेक्शन है। तीसरा आता है बेहोशी में, उल्टी, सरदर्द, गर्दन में दर्द और बुखार लेकर। उसे कहता हूँ, मेनिंगो-इंकेफलाइटिस, मस्तिष्क में इन्फेक्शन है। कोई उल्टी और दस्त लेकर आता है, उसे गैस्ट्रोएन्टेराइटिस यानि आँतों का इन्फेक्शन बताता हूँ। यानि ले दे कर सबको एक ही बात कहता हूँ कि इन्फेक्शन है?

जनरल मेडिसिन का बहुत बड़ा भाग इन्फेक्शन में ही निकल जाता है। और बहुत सी बीमारियाँ होती हैं...डायबिटीज हो या कैंसर...उनसे भी इन्फेक्शन किसी ना किसी तरह कॉम्प्लिकेशन बन के जुड़ा होता ही है।

ये सारे इन्फेक्शन अलग अलग होते हैं। सैकड़ों किस्म के बैक्टीरिया होते हैं। पर शरीर पर मूल प्रभाव एक तरीके से होता है।

मुझसे किसी ने कहा, मैं हर बात में वामपंथी एंगल ढूँढ़ता हूँ। क्या करूँ, ट्रेनिंग ही यही है। जब भी किसी को बुखार हो तो इन्फेक्शन का सोचना ही होता है। अगर समाज में संघर्ष, तनाव, कड़वाहट और नकारात्मकता दिखाई दे तो वामपंथी एंगल होगा ही होगा। जैसे कल्चर टेस्ट में अलग अलग किस्म के बैक्टीरिया का ग्रोथ दिखाई देता है वैसे वामपंथ के अलग अलग रूप हर किस्म के सामाजिक संघर्ष में दिखाई पड़ते ही हैं।

हाँ; मूल समस्या कहीं और से शुरू हो सकती है। अशिक्षा हो, गरीबी हो या जातिवादी विभाजन। जैसे एक खरोंच आ जाये, कट या जल जाए तो वह खुद धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा। पर अगर उसमें इन्फेक्शन हो जाये तो जब तक इन्फेक्शन का इलाज ना करो वह जला-कटा ठीक नहीं होगा। एक छोटी-सी फुन्सी भी बढ़ कर फोड़ा, फोड़ा बढ़कर गैंग्रीन हो जाएगा। हमारे समाज में ऐसे

अवसर आते रहे हैं जब हमने अपनी समस्याओं और कमियों को दूर किया है। पर जब से उसमें वामपंथ का इन्फेक्शन लग गया है, कोई समस्या दूर ही नहीं होती। बढ़ती जा रही है। 70 सालों के सुधारों और सामाजिक बदलावों के बावजूद जातिगत वैमनस्य बढ़ता जा रहा है। बीमारी और गहरी होती जा रही है।

कैसे ना देखूँ वामपंथी एंगल... अगर खून और मवाद से बजबजाता घाव हो तो उसमें बीमारी के कीटाणु होंगे ही होंगे। वहाँ पहला चीरा किसने मारा, पहली चोट कैसे लगी थी यह तो पुरानी बात है। आज कौन है जो लगातार उन घावों में खोंचा मार-मार कर उसे और गहरा कर रहा है? उस पर मिट्टी और गोबर डाल के उसे और इन्फेक्टेड बना रहा है और कह रहा है कि ये प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग हैं?

समाज की हर छोटी-बड़ी कमजोरी में पनपने वाले कीटाणु हैं वामपंथी, हर घाव में पनप रहे कीड़े हैं। इन्हें पहले मारिये, हर घाव भर जाएगा।

28 : विक्टिम-आइडेंटिटी और कनफ्लिक्ट नैरेटिव

हमारी फिल्म इंडस्ट्री हमेशा वामपंथी रही है। 70 और 80 के दशक में यह प्रभाव सिनेमा के कथानकों में एक सतत थीम था। 80 के समानांतर सिनेमा में आक्रोश, अर्धसत्य, निशांत, पार, पार्टी, मिर्च-मसाला, दामुल जैसी फिल्में जिन्हें कोई नहीं देखता था और जिन्हें बाद में दूरदर्शन पर पब्लिक को परोस कर जीवन दिया गया...वे तो खुलेआम वामपंथी कथानक की फिल्में थीं। पर मुख्यधारा के सतही कमर्शियल सिनेमा में भी यह प्रभाव स्पष्ट था। हर किसी ने बॉलीवुड मुझसे ज्यादा ही देखा होगा। सभी अपना संकलन बना सकते हैं।

सामान्य रोमांटिक फिल्मों में भी एक लड़के से एक लड़की को प्यार नहीं होता था। एक गरीब, रिक्शा चलाने वाले मेहनती ईमानदार मिथुन चक्रवर्ती से एक अमीर, बेईमान, निर्दयी पूँजीपति की बेटी को प्यार होता था...एक पुलिसवाला एक बेकसूर को नहीं पीटता था...एक ऊँची जाति के जमींदार के कहने पर एक ऊँची जाति का पुलिसवाला एक गरीब ईमानदार नीची जाति के बेकसूर को सताता था...

एक वामपंथी यह वर्ग संघर्ष हमेशा खोज लेता है...जहाँ वर्ग संघर्ष ना दिखे वहाँ वर्ण-संघर्ष खोज लेता है। बल्कि वर्ण-संघर्ष में वर्ग-संघर्ष से ज्यादा संभावनाएँ हैं। वर्ग तो बदल सकता है। संघर्ष करने के बजाय एक व्यक्ति मेहनत और होशियारी से अपना वर्ग बदल सकता है। एक गरीब मजदूर के अमीर पूँजीपति बनने के रास्ते हमेशा खुले हैं...कठिन है, पर संभव है, दूध बेचने वाले धीरूभाई का अम्बानी बन जाना...

पर जिग्नेश मेवानी बनना हमेशा फायदे का काम है। कितना भी पैसा कमा लें, आप हमेशा दलित और पीड़ित ही रहेंगे। आपने अपना नाम ही दलित रख लिया है...आप जेनेरिक विक्टिम हैं। आप आईएएस बन कर भी विक्टिम रहेंगे,

मुख्यमंत्री बन कर भी विक्टिम रहेंगे, राष्ट्रपति बन कर भी विक्टिम ही रहेंगे। आपसे इस विक्टिमहुड के फायदे कोई नहीं छीन सकता। यह जेनेरिक विक्टिमहुड की कल्पना वामियों का मास्टरस्ट्रोक है। यह अमीर-गरीब या मजदूर-पूंजीपति के संघर्ष से ज्यादा स्कोप वाला संघर्ष है। इसमें उनकी कहानी का नायक अपनी विक्टिम-आइडेंटिटी से ज्यादा गहरे और अभिन्न तरीके से जुड़ा है।

यह विक्टिम-आइडेंटिटी का विचार और इस आइडेंटिटी से निकलने वाला वर्ग संघर्ष आज के उत्तर-आधुनिक वामपंथ की पहचान है। इनकी दुनिया में हर सामाजिक संपर्क एक संघर्ष है। इनकी दुनिया में एक कार और एक साईकल में टक्कर नहीं होती...एक पूँजीपति की कार और एक मजदूर की साईकल में टक्कर होती है। एक सवर्ण की मोटर-साईकल एक दलित के स्कूटर से टकराती है, एक बहुसंख्यक का बच्चा एक अल्पसंख्यक के बेटे को बिना बैटिंग दिए क्रिकेट के मैदान से भगा देता है...दो कुत्ते भी एक दूसरे पर भौकेंगे तो ये यह देखने से नहीं चूकेंगे कि कैसे एक सवर्ण अमीर पूँजीपति का चिकन मटन खाया हुआ कुत्ता एक गरीब दलित की पाली हुई मरियल कुतिया पर भूँक रहा था...

यही दिव्यदृष्टि ही वामपंथ है...यह जहाँ दिखाई दे, संघर्ष, अव्यवस्था, अशांति और उपद्रव ज्यादा दूर नहीं हैं।

29 : नरक का शोरूम

आपने फौज की रिक्रूटमेंट देखी है कभी? रिक्रूटमेंट ऑफिस के बाहर क्या बड़ी बड़ी पोस्टर्स लगी होती है। बढ़िया चमकती यूनिफार्म में, स्मार्ट एसडी सूट और पीक कैप में हैंडसम फौजी, रेडियो टेलीफोन लिए, टैंक और हेलीकॉप्टर चलाते, पैराशूट से कूदते जांबाज फौजी, तलवार लेकर 26 जनवरी की परेड करते ग्लैमरस फौजी...

और अंदर बहाली के लिए खड़ी भीड़ देखी है? पहले एक मील की दौड़, फिर कपड़े उतार कर मेडिकल, फिर एक लिखित एग्जाम...फिर बहाली...ट्रेनिंग...ट्रेड का बँटवारा...

बन्दा फौज में जाकर सिर्फ गनर और पैराट्रूपर नहीं बनता...फौज में मोची, नाई, धोबी, क्लर्क सभी होते हैं। और वे रोज रोज टैंक नहीं फायर करते, पैराशूट से नहीं कूदते...घास भी काटते हैं, क्वार्टर गार्ड में चूना गेरू भी करते हैं, बैरक की नालियों की सफाई भी करते हैं, गार्ड ड्यूटी, सहायक ड्यूटी सब कुछ करते हैं... पर रिक्रूटमेंट ऑफिस के पोस्टर पर वह चमचमाती तस्वीरें ही नजर आती हैं।

वामपंथी प्रचार भी एक फौजी रिक्रूटमेंट जैसा है। लोगों को बहाली के लिए चमकदार तस्वीरें दिखाई जाती हैं। मजदूरों को कम्यूनिज्म का स्वर्ग दिखाया जाता है, किसानों को अपनी जमीन के मालिक होने के सुख समझाए जाते हैं, दलितों को सदियों के अत्याचारों की कहानियाँ और उनका बदला लेने के अवसर समझाए जा रहे हैं, स्त्रियों को समानता की तस्वीर दिखाई जा रही है...हर वर्ग को किसी ना किसी रूप से वंचित, पीड़ित, शोषित होने की कहानी सुनाई जा रही है...हर वर्ग में उनकी एक पीड़ित पहचान स्थापित की जा रही है... माइनॉरिटी को मेजोरिटी से, स्त्री को पुरुष से, अवर्ण को सवर्ण से लड़ने और जीतने के रास्ते सिखाये जा रहे हैं...

यह सब रिक्रूटमेंट टेक्निक है। जो जिस तरह से भर्ती हो जाये, ठीक है। भर्ती होने

के बाद ऐसा नहीं है कि उनसे पूछ कर उन्हें लड़ाई पर भेजा जाएगा। उनकी सोच कर टैक्टिकल और स्ट्रेटेजिक गोल निर्धारित किये जायेंगे और है यह फौज, तो यह भी नहीं कि इसके अंदर सबमें समानता होगी, कोई हायरार्की नहीं होगी। फौज बिना हायरार्की के हो ही नहीं सकती...तो एक नई हायरार्की, एक नई शोषक श्रेणी, एक नया शोषित वर्ग होगा...पर तबतक तो मछली के गले में काँटा फँस चुका होगा। तो मछली को पानी के अंदर रहना है तो उसे ज्यादा छटपटाने की छूट नहीं होगी...

फौज से यह तुलना एक दृष्टि से अनुचित भी है...क्योंकि एक फौज का एक उद्देश्य होता है, एक आदर्श होता है, फौज में आप एक पवित्र ध्येय के लिए लड़ते हैं और फौज आपका ख्याल भी रखती है...यह फौज से ज्यादा एक गैंग जैसा है। पर इसके रिक्रूटमेंट की तकनीक बस रिक्रूटमेंट ऑफिस के विज्ञापन जैसी है। जो एक बार अंदर घुसेंगे, उन्हें समझ में आएगा कि फौज से निकलना आसान नहीं होता, और भगोड़ा होने की सजा क्या होती है...

30 : एक सामाजिक मनोरोग

वामपंथ को आप कितना समझते हैं?

क्या आप कभी चवन्नी अठन्नी पाई धेला भर वामपंथी रहे हैं? वामपंथियों को सबसे अच्छा वे समझते हैं जो कभी वामपंथी रहे हैं...मैं भी कभी धेला पाई भर वामपंथी रहा हूँ...

स्किजोफ्रेनिया (Schizophrenia) का नाम सुना है? यह एक मनोरोग है, सायकोसिस कहते हैं इसे...सायकोसिस, यानि एक ऐसी मानसिक अवस्था जिसमे रोगी की रियलिटी, उसकी दुनिया आपकी हमारी दुनिया से अलग होती है। उनकी अपनी एक अलग ही रियलिटी होती है...

एक फिल्म है "The beautiful mind"---एक गणितज्ञ जॉन नैश के जीवन पर। आधी फिल्म तक फिल्म में यही दिखाता रहा कि कैसे जॉन नैश का केजीबी वाले पीछा कर रहे हैं, उसे आदेश दे रहे हैं, वह भाग रहा है...एक कमरे में बंद होकर वह एक टॉप सीक्रेट मिलिट्री मिशन के लिए काम कर रहा है...और आधी फिल्म के बाद पता चलता है कि यह सब सायकोसिस था, उसकी बीमारी का भाग था। जॉन नैश को शिचजोफ्रेनिया था, पर उसके लिए यही रियलिटी थी... और जबतक आपको पता नहीं चल जाता कि यह सायकोसिस है, आप उसके नैरेटिव को सब्सक्राइब करते हैं और वह आपको भी वास्तविक ही लगता रहता है...

वामपंथ एक तरह का sociopsychosis है। उनकी सोशल रियलिटी कुछ और है। उसमें वर्ग संघर्ष है, क्रांति है, समानता है...तरह तरह की बकवास है जो आपको तब-तक दिखाई नहीं देगा जब तक आप उनके नैरेटिव को सब्सक्राइब नहीं करेंगे, या आप खुद उनके सायकोसिस से ग्रस्त नहीं हो जायेंगे।

जो भी वामपंथ समर्थक हैं, सभी वामपंथी नहीं हैं। उसमे से अनेक लोग हैं जो सिर्फ सिनेमा के दर्शक हैं। वे उनका नैरेटिव सब्सक्राइब करते हैं, क्योंकि आज

तक नैरेटिव बिल्डिंग का, कथ्य-निर्माण (क्योंकि तथ्य और सत्य का निर्माण नहीं हो सकता, कथ्य का निर्माण हो सकता है) का धंधा उनके ही हाथ में रहा है। पाठ्यपुस्तकों, इतिहास लेखन, कला-साहित्य-सिनेमा पर उनकी पकड़ ने दर्शकों को कब्जे में रखा है...उन्हें अपना नैरेटिव परोसते आये हैं।

पर 'The Beautiful mind' फिल्म की तरह जैसे ही दर्शकों को बताया जाता है की जो कुछ भी आप अभी तक देखते आये हैं, वह जॉन नैश का सायकोटिक एक्सपीरियंस था...कहानी स्पष्ट हो जाती है। एकाएक आपको वह स्किजोफ्रेनिआ का मरीज, एक मनोरोगी नजर आने लगता है।

वामपंथ बहुत ही खराब सामाजिक मनोरोग है...आपको एक उदहारण दूँगा...

जब मैं अपने आपको धेला भर वामपंथी समझता था। 70 के दशक का मोमेंटम 80 के दशक में भी था जिसमे मेरी किशोरावस्था गुजरी है। पढ़ने के नाम पर सबसे सुलभ और सस्ती प्रगति प्रकाशन की रूसी किताबें ही थीं, जिसमें चेखोव और दोस्तोयेव्स्की के साथ-साथ तीसरे दर्जे का वामपंथी साहित्य भी खपा दिया जाता था...तब की अपनी सोच बताता हूँ...

11वीं क्लास में कॉलेज में एक टर्मिनल एग्जाम हुआ था, उसमे अंग्रेजी में patriotism पर एक लेख लिखने के लिए आया था...मुझे याद है, तब मैंने लिखा था...patriotism दुनिया के सभी मानवीय सेंटीमेंट्स में सबसे खराब और हानिकारक सेंटीमेंट है...दुनिया में सभी लड़ाइयों की, खून खराबे और संघर्ष की जड़ है...व्यक्ति को बाँध कर रखने का, उनके मानसिक आध्यात्मिक विकास को अवरुद्ध रखने का साधन है...एक गुलामी है जो आदमी अपनी मर्जी से चुनता है।

तब मैंने कहा था...व्यक्ति के आत्म निर्णय का अधिकार सबसे प्रमुख है...अगर कश्मीर के लोग अलग होना चाहते हैं तो हो जाएँ...उन्हें बाँध कर रखने से हम क्या अचीव कर रहे हैं?

बाद में समझ में नहीं आया था कि मेरे इतने धाँसू लेख के बावजूद मेरे नंबर इतने

कम क्यों आये। वह पटना यूनिवर्सिटी थी, कोई जे एन यू नहीं... इसके बारे में भैया से बात की तो उन्होंने सरल शब्दों में इतना ही कहा था...patriotism का मतलब किसी देश से लड़ाई लड़ना नहीं है...सड़क के किनारे नहीं मूतना, स्टेशन पर नहीं थूकना, सड़क पर बाएँ से चलना, कूड़ा कूड़ेदान में डालना सब patriotism ही है...

खैर, मैं सिर्फ एक नैरेटिव का सब्सक्राइबर था...दर्शक था...जल्दी ही निकल आया। बहुत से लोग जो इन वामपंथियों से सहानुभूति रखते हैं, वे सिर्फ दर्शक ही हैं....अगर हम उन्हें एक काउंटर-नैरेटिव देते रहेंगे, वामपंथ की सच्चाई बताते रहेंगे, उन्हें सच दिखाई देता रहेगा...जो सचमुच के वामपंथी हैं...जिनके खून में यह वामपंथ घुलमिल गया है...उनका यह सायकोसिस नहीं जाने वाला...

या शायद चला जाये बिजली के झटकों से...उसका भी इंतजाम करना पड़ेगा शायद...

31 : कोढ़, खाज और कम्यूनिज्म.....

1989...जीवन में सबसे अनिश्चितता और असुरक्षा का साल था। उन दिनों पटना में मेडिकल की कोचिंग कर रहा था, दूसरे दसियों-हजार बच्चों की तरह, जो बिहार के कोने-कोने से एक बार जरूर डॉक्टर-इंजीनियर बनने के लिए हाथ आजमाने आते हैं...कुछ महत्वाकांक्षा लिए, कुछ किस्मत साथ दे जाए यह उम्मीद लिए, कुछ सिर्फ गाँव से निकल कर पटना में मस्ती मारने की मंशा लिए।

तब पता नहीं था, पर आज सोचता हूँ तो दिखाई देता है...अशोक राजपथ पर सेकेंड हैंड किताबें खरीदने और गंगा किनारे गाँधी घाट पर बैठने के अलावा एक और घोर बीमारी थी ... शायद 70 का कम्युनिस्ट हैंगओवर था, या असमय पढ़ी हुई सस्ती मिलने वाली रसियन किताबों का अधकचरा असर - बड़ा घोर सेक्यूलरिस्ट हुआ करता था...मित्र भी बड़े हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई पैटर्न से बनाता था, या शायद अनायास बनते थे...

तब एक मित्र हुआ करता था - मलयाली क्रिस्चन। पढ़ने में संजीदा। मेरा स्टडी पार्टनर। वह मुझे बॉटनी-जूलॉजी पढ़ाया करता था, और मैं उसे फिजिक्स-फीजिकल केमिस्ट्री. सालिमपुर आहरा में एक केरला कॉफी हाउस हुआ करता था, उससे लगा हुआ एक स्टूडेंट लॉज था, वहीं रहता था...

हर संडे को सूट-टाई लगा कर उसका चर्च जाना भी बहुत आकर्षक लगता था... खास तौर से तब जब टुटी चप्पल-फटी पैंट अपनी मस्त यूनिफार्म हुआ करती थी। तभी पहली बार हम सब उसके कमरे में जुटे थे क्रिसमस की पार्टी मनाने। बड़ा एलीट फीलिंग हुआ था - एकदम हिप एण्ड मॉडर्न...

जेम्स का एक रूममेट हुआ करता था - रवि शैलेन्द्र सिंह के गाने बड़ा अच्छा गाता था। उसके कमरे के दरवाजे पर, दीवारों पर स्टिकर्स और पोस्टर्स हुआ करते थे - 'गर्व से कहो हम हिन्दू हैं', और 'भारत हिन्दू राष्ट्र है।'

एक दिन मेरे भीतर का सेक्यूलर जाग गया और बड़ा ही आहत हो गया। मैंने खूब

बहस की, जम कर गलथेथ की - भारत सबका है..सेक्यूलर है..अगर आपको हिन्दू होने सचमुच में गर्व है तो चिल्ला कर बोलने की जरूरत नहीं होती ... वही; स्टैंडर्ड बकवास..

रवि विलकुल शान्ति से, सधे शब्दों में मेरी हर बकवास का जवाब देता रहा... तीन घंटे तक। मैं महसूस कर रहा था कि मेरे पास ना सोच थी, ना जानकारी.. सिर्फ सेक्यूलर मरोड़ थी पेट में, और बकैती करने की अपनी क्षमता पर अखंड विश्वास...

कोढ़, खाज और कम्यूनिज्म...कुछ बीमारियाँ जाते जाते जाती हैं...

32 : रुपये बनानेवाली मशीन की कहानी

किसी ने एक कहानी सुनाई थी...वैसे कहानी किसी और संदर्भ में थी, पर मैं इसका संदर्भ कुछ बदल कर सुना रहा हूँ...

एक गाँव में एक बनिया और एक कुम्हार था। कुम्हार ने बनिये से कहा, मैं तो बर्तन बनाता हूँ, पर गरीब हूँ...तुम्हारी कौन-सी रुपये बनाने की मशीन है जो तुम इतने अमीर हो?

बनिये ने कहा - तुम भी अपने चाक पर मिट्टी से रुपये बना सकते हो।

कुम्हार बोला - मिट्टी से मिट्टी के रुपये ही बनेंगे ना, सचमुच के तो नहीं बनेंगे।

बनिये ने कहा - तुम ऐसा करो, अपने चाक पर 1000 मिट्टी के रुपये बनाओ, बदले में मैं उसे सचमुच के रुपयों में बदल कर दिखाऊँगा।

कुम्हार ज्यादा बहस के मूड में नहीं था...बात टालने के लिए हाँ कह दी।

महीने भर बाद कुम्हार से बनिये ने फिर पूछा - क्या हुआ ? तुम पैसे देने वाले थे...

कुम्हार ने कहा - समय नहीं मिला...थोड़ा काम था, त्योहार बीत जाने दो... बनाउँगा...

फिर महीने भर बाद चार लोगों के बीच में बनिये ने कुम्हार को फिर टोका - क्या हुआ? तुमने हजार रुपये नहीं ही दिए...दो महीने हो गए...

कुम्हार फिर टाल गया - दे दूँगा, दे दूँगा... थोड़ी फुरसत मिलने दो।

अब कुम्हार जहाँ चार लोगों के बीच में मिले, बनिया उसे हजार रुपये याद दिलाए... कुम्हार हमेशा टाल जाए...

6 महीने बाद बनिये ने पंचायत बुलाई और कुम्हार पर हजार रुपये की देनदारी का दावा ठोक दिया। गाँव में दर्जनों लोग गवाह बन गए जिनके सामने बनिये ने

हजार रुपये माँगे थे और कुम्हार ने देने को कहा था। कुम्हार की मिट्टी के रुपयों की कहानी सबको अजीब और बचकानी लगी और पंचायत ने कुम्हार से हजार रुपये वसूली का हुक्म सुना दिया...

अब पंचायत छँटने पर बनिये ने समझाया – देखा, मेरे पास बात बनाने की मशीन है। इस मशीन में मिट्टी के रुपये कैसे सचमुच के रुपये हो जाते हैं, समझ में आया?

इस कहानी में आप नैतिकता, न्याय और विश्वास के प्रपंचों में ना पड़ें...सिर्फ टेक्निक को देखें...बनिया जो कर रहा था, उसे कहते हैं narrative building...कथ्य निर्माण...सत्य और तथ्य का निर्माण नहीं हो, कथ्य का निर्माण हो ही सकता है। अगर आप अपने आसपास कथ्य निर्माण होते देखते हैं, पर उसकी महत्ता नहीं समझते, उसे चैलेंज नहीं करते तो एकदिन सत्य इसकी कीमत चुकाता है...

हमारे आस-पास ऐसे कितने ही नैरेटिव बन रहे हैं। दलित उत्पीड़न के, स्त्री-दासता और हिंसा के, बलात्कार की संस्कृति के, बाल-श्रम के, अल्पसंख्यक की लींचिंग के...ये सब दुनिया की पंचायत में हम पर जुर्माना लगाने की तैयारी है। हम कहते हैं, बोलने से क्या होता है? कल क्या होगा, यह इसपर निर्भर करता है कि आज क्या कहा जा रहा है। इतने सालों से कांग्रेस ने कोई मेरी जायदाद उठा कर मुसलमानों को नहीं दे दी थी...सिर्फ मुँह से ही सेक्युलर-सेक्युलर बोला था ना...नतीजा देख लीजिए, यही सेक्युलरिज्म आज तक योगी-मोदी के गले में भी अटका पड़ा है।

बोलने से क्या होता है? बोलने से कथ्य-निर्माण होता है...दुनिया में देशों का इतिहास बोलने से, नैरेटिव बिल्डिंग से बनता बिगड़ता रहा है। यही आर्य-द्रविड़ बोल बोल कर ईसाइयों ने श्रीलंका में गृह-युद्ध करा दिया...भारत में मूल-निवासी आंदोलन चला रहे हैं...हम नैरेटिव का रोल नहीं समझते...हम इतिहास दूसरे का लिखा पढ़ते हैं, हमारे धर्मग्रंथों के अनुवाद विदेशी आकर करते

हैं। हमारी वर्ण-व्यवस्था अंग्रेजों के किये वर्गीकरण से एक कठोर और अपरिवर्तनीय जातिवादी व्यवस्था में बदल गई है...हमने अपने नैरेटिव नहीं बनाए हैं...दूसरों के बनाये हुए नैरेटिव को सब्सक्राइब किया है...

मोदीजी लालकिले से सेक्युलरिज्म की भाषा बोलते हैं...हम सफाई देते हैं... बोलने से क्या होता है, काम देखो, काम!

पर लालकिले से दिया गया प्रधानमंत्री का संबोधन एक भाषण नहीं है। एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। ये वो औजार हैं, वो ईटें हैं, जिनसे हमारे इतिहास-बोध की इमारत बननी है। मोदी काम करके चले जायेंगे...10, अधिक से अधिक 15 साल...उनके बाद जो आएगा वो उसी नैरेटिव से बँधा होगा जो मोदी छोड़ कर जाएँगे, जैसे मोदी आज कांग्रेस के सेक्युलर नैरेटिव से बँधे हैं...अगर हम अपना कथ्य निर्माण नहीं करेंगे, तो सत्य सिर्फ परेशान ही नहीं, पराजित भी हो जाएगा.. सत्यमेव जयते को अभेद्य अजेय मत समझिए...

33 : झूठ की फैक्ट्री

शतरंज में जब एक चाल चली जाती है तो उसका मकसद कई चालों के बाद समझ में आता है।

पिछले कई हफ्तों से इंग्लैंड में एक खबर छाई रही। यहाँ सेलिस्बरी में एक रूसी व्यक्ति और उसकी बेटी पर एक केमिकल नर्व एजेंट से हमला किया गया। वह रूस में एक ब्रिटिश एजेंट था जिसे रूस में गिरफ्तारी के बाद ब्रिटेन में किसी तरह शरण मिली हुई थी। बाप-बेटी लंबे समय तक आईसीयू में रहे। ब्रिटेन का दावा है कि यह हमला रूस ने किया है और प्रतिक्रियास्वरूप यहाँ के रूसी राजदूत को निष्कासित कर दिया गया। कुल 28 देशों से रूसी राजदूत को निष्कासित किया गया, रूस की खूब लानत-मलामत हुई। यहाँ के टीवी-रेडियो पर यह बहस छायी रही।

लंबे समय तक यह बहस सुन कर मेरी समझ में यह नहीं आया कि यह हमला रूस ने किया था या नहीं? रूस के पास उस व्यक्ति को मारने की वजह थी। पर उसके लिए नर्व एजेंट इस्तेमाल करने जैसा कॉम्प्लिकेटेड काम करने की क्या जरूरत थी? क्या रूस के पास एक भी ऐसा एजेंट नहीं है जो इस काम को शांति से, चुपचाप चाकू या एक साइलेंसर वाली गन से कर सके?

पर अगर रूस ने नहीं किया तो कोई दूसरा क्यों करेगा? या ब्रिटेन खुद अपने देश में ऐसा कोई काम क्यों करेगा?

तो लीजिये, चार हफ्ते के ड्रामे के बाद अगली खबर आई... सीरिया में भी सिविलियन्स पर एक केमिकल हमला किया गया है...उसमें मरने वाले बच्चों की खौफनाक तस्वीरें मीडिया में घूम रही हैं, और यहाँ के चैनल चीख-चिल्ला रहे हैं कि छोटे-छोटे बच्चे रासायनिक हथियारों से मारे जा रहे हैं, हम क्या कर रहे हैं? सीरिया में रूस के सहयोगी असद ने ही यह हमला किया होगा, इसलिए असद पर हमला किया जाए...तीन-चार दिन इस पर माहौल बना, फिर इंग्लैंड

और अमेरिका ने असद के हथियारों के ठिकानों पर अपने बेकार पड़े, जंग खा रहे एक्सपायरी डेट के पास पहुँच रहे मिसाइल ठोक दिए। ब्रिटेन की प्रधानमंत्री थेरेसा मे ने भी संसद में बयान दिया कि रासायनिक हथियारों का प्रयोग दुनिया में कहीं भी हो, हम बर्दाश्त नहीं कर सकते...चाहे सीरिया में हो, या इंग्लैंड की सड़कों पर...इसलिए हमने राष्ट्र-हित में यह निर्णय लिया...

राजनीति में कुछ भी इतना रिएक्टिव नहीं होता। आप अपना नैरेटिव अपने हाथ में रखते हैं...कम से कम पश्चिम में यह राजनीतिक समझ है...

तो मेरी दृष्टि में यह कहानी कुछ ऐसी है – इंग्लैंड और अमेरिका को सीरिया पर मिसाइल दागने थे, असद को रोकना था। पर उसे अपने देश में जनता के सामने जस्टिफाई भी करना था। तो बच्चों पर केमिकल हथियारों से हमले की कहानी बेची गई। बच्चे बहुत अच्छा विज्ञापन होते हैं, जॉनसन बेबी सोप और सेरेलैक से लेकर वाशिंग पाउडर, टूथपेस्ट और यूरेका फोर्ब्स का वैक्यूम क्लीनर तक सबकुछ बच्चों के नाम से बिक जाता है। तो दुनिया को एक और लड़ाई बेचनी हो तो उसके लिए भी बच्चे ही सही विज्ञापन हैं। पर उसके पहले अपने लोकल मार्किट में इस केमिकल हमले की कहानी का बाजार बनाना है। तो उसके लिए यह लोकल नर्व-एजेंट की कहानी घुमाई गई। फिर जब इंग्लैंड ने सीरिया पर मिसाइलें दागीं तो यहाँ किसी ने चूँ नहीं की। जनमत साथ था...आखिर यह सब एक नेक काम के लिए किया गया...छोटे छोटे बच्चों का मामला है...और एक नेक काम के लिए तो एक सच्चा अंग्रेज हमेशा तैयार ही रहता है...

जब कोई एक काम करना होता है तो पहले हफ्तों एक नैरेटिव तैयार किया जाता है। उसकी कड़ियाँ जोड़ी जाती हैं। इंग्लैंड में रूस द्वारा केमिकल हमला, फिर रूस के सहयोगी असद द्वारा सीरिया में केमिकल हमला...इसलिए इंग्लैंड ने बड़ी ही मजबूरी में सीरिया पर राकेट दागे...

उन्हीं लोगों की तैयारी भारत में दिखाई दे रही है। हफ्तों नहीं, महीनों की तैयारी है...पहले एक मुस्लिम बच्चे की हत्या की...फिर एक दलित के बलात्कार की

कहानी निकाली...फिर दोनों को बीजेपी से किसी तरह जोड़ा...दलित–मुस्लिम गठजोड़ खड़ा करने और दलितों को बीजेपी के खिलाफ भड़काने के लिए...पर बस इतना ही नहीं। अगर कोई बात बीजेपी से जोड़ी जा सकती है तो वह अपने आप मोदी और हिन्दू धर्म से जुड़ जाती है। यह आज लंदन में हुए मोदी के खिलाफ प्रोटेस्ट की तैयारी थी, जिसकी तैयारी के लिए आसिफा की हत्या की गई थी। यहाँ इस प्रोटेस्ट की जानकारी थी, पता था कि मोदी के आने पर यह होगा। तब तक आसिफा की यह कहानी भी मीडिया में नहीं उछली गई थी। पर पूरी टाइमिंग के साथ भारत में यह स्टोरी चलाई गई जिससे आज लंदन में मोदी विरोध के पूर्व–प्रायोजित कार्यक्रम को एक मनपसंद नैरेटिव मिल गया...

बहुत मेहनत का काम है एक झूठ को खबर में, और फिर एक खबर को इतिहास में बदलने का काम। समझिये, एक बड़ी–सी फैक्ट्री में होता है यह काम। पूरी एक असेंबली लाइन होती है, जहाँ एक झूठ से दूसरे झूठ की कड़ियाँ जोड़ी जाती हैं, फिर उनपर मानव करुणा की परत चढ़ाई जाती है...

उस फैक्ट्री का नाम है मीडिया और प्रोडक्ट का ब्रांड नेम तो जानते ही हैं आप... वह है आपका जाना पहचाना विषैला वामपंथ।

34 : कलह का कारोबार

वामपंथ का चरित्र वैश्विक है। उसे आप आइसोलेशन में नहीं देख सकते। यह दुनिया में फैला एक जाल है, किसी इंटरनेशनल माफिया की तरह।

आजकल आते-जाते गाड़ी में रेडियो सुनता हूँ। एक चैनल है LBC... लीडिंग ब्रिटेन्स कन्वर्सेशन। उस पर यहाँ की लिबरल हेट-लिस्ट के टॉप पर चल रहे नाइजेल फराज का कार्यक्रम भी आता है।

कल चर्चा हो रही कि लंदन में चाकूबाजी और हत्या की घटनाएँ बढ़ रही हैं। इस साल अभी तक 55 हत्याएँ हो चुकी हैं, परसों एक रात में 7 घटनाएँ हुई। इसमें ज्यादातर शिकार और अपराधी, दोनों अश्वेत समुदाय के हैं। सादिक खान के मेयर बनने के बाद पुलिस ने स्टॉप एंड सर्च यानी संदिग्ध व्यक्तियों की रोक कर जाँच करने का काम बंद कर दिया है...क्योंकि ज्यादा संदिग्ध अश्वेत होंगे और यह करना पॉलिटिकली इनकरेक्ट होगा।

लोग तरह-तरह के तर्क दे रहे थे...एक बन्दा कह रहा था...स्टॉप एंड सर्च से फायदा नहीं है। शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए। अश्वेत बच्चों को स्कूलों में अच्छा एजुकेशन नहीं मिलता। प्रिविलेज्ड वाइट और एशियन कम्युनिटी के लोग नहीं समझेंगे कि अश्वेतों के लिए जीवन कितना कठिन है...इसलिए वे गैंग में भर्ती हो जाते हैं।

प्रिविलेज्ड एशियन सुना था आपने? यहाँ आने वाला हर एशियन खाली जेब और फटे जूते लेकर ही आता है। फिर वह प्रिविलेज्ड कब हो जाता है? सुनने में यह कुछ-कुछ अत्याचारी दमनकारी गरीब ब्राह्मण जैसा नहीं लग रहा?

एक और प्रसंग था। नाइजेल फराज ने विषय उठाया कि ब्रिटेन का फॉरेन एड बजट 14 बिलियन पॉन्ड हो गया। इससे ब्रिटेन को क्या फायदा?

किंग्स कॉलेज की एक लिबरल वामपंथी प्रोफेसर साहिबा बहस कर रही थीं कि यह वर्ल्ड पॉवर्टी को खत्म करने का प्रयास है। फराज ने पूछा, क्या इंग्लैंड में

गरीबी खत्म हो गई है? क्या अब आपको एनएचएस के लिए फंडिंग नहीं घट रही है? आप मलावी में क्लिनिक लगा रहे हैं, और एनएचएस में लोगों को डॉक्टर का अपॉइंटमेंट नहीं मिल रहा...

प्रोफेसर साहिबा ने पैंतरा बदला...जिससे आप समझ सकते हैं कि मैंने क्यों कहा कि वह वामपंथी थी...जबकि किसी ने उनका परिचय वामपंथी बोलकर नहीं दिया था।

वह कहती हैं ... अच्छा है अब आप भी एनएचएस की फंडिंग बढ़ाने का समर्थन कर रहे हैं...पर आपको दो प्रोग्रेसिव मुद्दों को एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा करने की जरूरत नहीं है। देश में गरीबी इसलिए है क्योंकि संपत्ति का बँटवारा बराबरी का नहीं है।

देखिये, दो प्रोग्रेसिव मुद्दों को आपस में मत लड़ाइये... पर देश में लोगों को आपस में लड़ाइये...एक इसलिए गरीब है, क्योंकि दूसरा कोई ज्यादा पैसे कमाता है। शरणार्थियों को देश में घुसाइये, उन्हें मुफ्त फ्लैट बाँटिये, डिसेबिलिटी के नाम पर एक-एक व्यक्ति को तीन-तीन चार-चार हजार पॉन्ड की खैरात बाँटिये, मलावी में क्लिनिक चलाइये पर एनएचएस की फंडिंग काटिये। पैसे फालतू कामों में लगाइए, बर्बाद कीजिये। जिससे गरीबी बनी रहे और आप उन गरीबों को यह समझा सकें कि उनकी गरीबी के लिए वे लोग जिम्मेदार हैं जो खुद गरीब नहीं हैं...वे असंतुष्ट लोग आपकी फौज बनेंगे, आपको चुन कर पार्लियामेंट भेजेंगे, आपको सत्ता में बनाये रखेंगे...पर खुद वे गरीब बने रहेंगे और आपके लिए खतरा नहीं बनेंगे, आपकी जगह कभी नहीं लेंगे...क्योंकि आप उनके खैरख्वाह हैं और उन्हें सरकारी मदद की जरूरत और आदत है...

सुना था, अंग्रेजों ने जब चीन पर कब्जा किया था तो पूरे देश को अफीम की लत लगवा दी थी...जिससे कि अफीम में डूबे देश पर शासन करना आसान हो। आज उसी अफीम का नाम समाजवाद है...

35 : वामपंथ का नशा, नशे का वामपंथ

पिछले दिनों कनाडा ने कैनाबिस को लीगल घोषित कर दिया। कनाडा के वामपंथी प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडू से यह उम्मीद तो थी।

पूरी दुनिया में वामपंथी प्रचार यही है कि कैनाबिस को लीगल होना चाहिए। इसके पीछे का तर्क यह है कि जब सिगरेट और शराब लीगल हैं तो कैनाबिस को लीगल होना चाहिए। पर इसके पीछे की नीयत यह है कि समाज में ज्यादा से ज्यादा लोग नशे की लत में आ जाएँ। जितने ज्यादा नशेड़ी होंगे उतने ज्यादा बेरोजगार, बेघर, लाचार होंगे...उतने ज्यादा लोगों के ये प्रवक्ता बन सकेंगे।

दुख की बात है कि यह नई पीढ़ी इनके ऐसे तर्कों को सब्सक्राइब भी किये बैठी है। वर्कप्लेस पर एक लड़की ने बिल्कुल इन्हीं तर्कों को दुहराया – कैनाबिस को कानूनी स्वीकृति देने के बहुत से अच्छे इफेक्ट होंगे...पहला, आप इसपर टैक्स ले सकेंगे। पर उसे अगर छोड़ भी दें, तो यह देखें कि तब इसे लीगली नियंत्रित किया जा सकेगा। इसकी क्वालिटी कंट्रोल भी होगी, तो इसे इस्तेमाल करना ज्यादा सेफ हो जाएगा और यह बिल्कुल भी फेयर नहीं है कि आप सिगरेट और एल्कोहॉल की अनुमति देते हो पर कैनाबिस पर प्रतिबंध है। यह कितना अर्बिट्ररी है ना...

यह सारे तर्क मेरे सुने हुए हैं। अपने बच्चों से इस विषय पर चर्चा करते हुए यह सुन चुका हूँ। यहाँ स्कूलों में यह प्रचार जोरों पर है। जब कोई अपने तर्कों से बिल्कुल कॉन्विन्स हो तो उसके तर्कों के विरुद्ध तर्क देने का कोई फायदा नहीं है। उसे वहाँ से दूर ले जाएँ और पूरे विषय को किसी दूसरे एंगल से दिखाने की कोशिश करें।

वह लड़की मेरे साथ ही गैस्ट्रोएंटरोलॉजी वार्ड में है। यही वह वार्ड है जहाँ एल्कोहॉल के एडिक्ट्स, सिरोसिस के मरीज भर्ती होते हैं। 40-45 साल के लोग लिवर फेलियर से मरते हैं। मैंने उससे पूछा – तुम एल्कोहॉल का असर देख रही

हो। यह भी मानोगी कि जितने ज्यादा लोग एल्कोहॉल का प्रयोग करेंगे, उनमें से इसके दुष्प्रभाव झेलने वालों की संख्या भी बढ़ेगी? यह मानोगी कि अगर एल्कोहॉल इतना सहज सुलभ नहीं होता तो कम लोग इससे प्रभावित होते?

उसने कहा – हाँ, सही है।

– तो यह भी मानोगी कि जब कैनाबिस लीगल हो जाएगा तो उसका प्रयोग करने वालों की संख्या भी बढ़ेगी और उसके दुष्प्रभाव से प्रभावित भी ज्यादा लोग होंगे।

– हाँ, एब्सोल्यूट नंबर्स पर फर्क पड़ेगा...पर यह तो अर्बिट्रारी बात है ना कि आप एक चीज को लीगल रहने देते हैं और दूसरे को नहीं।

– ठीक है, अब इसे दूसरे एंगल से देखो। तुम्हारी शादी होने वाली है। कल को तुम्हारे बच्चे होंगे। मान लो, तुम्हारा बच्चा 14 साल का हो जाता है। तुम उसे कैसे समाज में बड़ा करना चाहोगी? वहाँ, जहाँ उसका एक्सपोजर कैनाबिस से ना हो, या वहाँ जहाँ वह कैनाबिस का 'सुरक्षित' प्रयोग कर सके? कैनाबिस के लिए क्या फेयर है, इसकी चिंता छोड़ो...तुम्हारे बच्चे के लिए क्या फेयर होगा?

वह थोड़ी देर शान्त, सोचती रही। मैं उसे छोड़ कर अपनी चाय का कप लेकर किचन में आ गया, और चाय बनाने लगा। फिर सोचा, गाँधीजी चाय को भी नशा गिनते थे। मैं भी रोज चार-छः कप चाय पीता ही हूँ। अभी तक तो ना लिवर खराब हुआ, ना फेफड़ा। लेकिन इसी की ओट लेकर एल्कोहॉल और कैनाबिस हमारे बीच घुस आया है। कल कोकेन और हेरोइन भी घुस आएँगे और आप उनके 'सेफ' प्रयोग के रास्ते खोज रहे होंगे। यूँ ही नहीं नशा इन वामपंथियों का प्रिय प्रयोग है। वे भी ऐसे ही किसी ना किसी सामाजिक परिवर्तन के नारे के पीछे छुप कर धीरे-धीरे हमारे बीच घुसे आते हैं।

36 : वामपंथी साहित्य का फ्रॉड

एक समय मुझे कुछ भी पढ़ जाने की अपनी क्षमता पर बहुत अभिमान था। जेफरी आर्चर और फ्रेडरिक फोरसिथ को पढ़ने से शुरू करके जब नायपॉल और मारकेज तक पहुँचा तो थोड़ा-सा घमंड से अकड़-सा गया था। 2003 की बात है। मेरठ में एक सीनियर थे, उन्होंने एक दिन एक किताब दी और शर्त लगाई कि इसे पढ़ के दिखाओ...किताब थी फ्रांज काफ्का के तीन उपन्यासों का एक संकलन।

मैंने कई दफा कोशिश की। साल भर तक कोशिश करता रहा...तीस चालीस पेज से आगे नहीं बढ़ पाया। जब मेरठ छोड़ने लगा तो उन्हें वह किताब लौटाने की कोशिश की...उन्होंने वापस भी नहीं ली। कहा, तुम्हें क्या लगता है, मैं इसे पढ़ने वाला हूँ क्या?

वह किताब आज भी भारत में घर के किसी कोने में पड़ी होगी। आज नाम भी याद नहीं है।

2005 में काफ्का से दूसरा परिचय हुआ। लंदन में एक बंगाली मित्र से घर शेयर करता था। वे घोर वामपंथी थे। घोर माने घनघोर समझिये। उन्हें कहा - क्या तुम अभी तक मार्क्स-लेनिन में अटके हो। वामपंथ मार्क्सवाद से आगे बढ़ चुका है, आज पोस्ट-मोडर्निज्म की बात होती है। उन्होंने कहा, तुम्हें काफ्का और मारकेज बोझिल और डिप्रेसिंग लगते हैं? तो गुंटर ग्रास को पढ़ो...उसके सामने तो काफ्का तुम्हें कॉमेडी लगेगा...

इस बार मैंने यह चारा नहीं लिया और गुंटर ग्रास को दूर से प्रणाम किया। पर एक गलती की, पोस्ट-मोडर्निज्म को समझने की कोशिश नहीं की। आज हम जिस फ्रैंकफर्ट स्कूल के कल्चरल मार्क्सवाद की बात कर रहे हैं, वही है पोस्ट-मोडर्निज्म।

2010 में काफ्का का एक रियल लाइफ अनुभव हुआ। इमरजेंसी में एक मरीज आया। मैं देखने गया। उसके इमरजेंसी कार्ड पर साफ-साफ नहीं लिखा हुआ था कि वह क्यों आया है। 45-50 के आसपास का, स्टाइलिश दाढ़ी और मोटे चश्मे वाला एक इम्प्रेसिव व्यक्ति था। मैंने इज्जत से उससे पूछा कि क्या मदद कर सकता हूँ, वह इमरजेंसी में क्यों आया है। उस व्यक्ति ने बहुत ही अच्छी अंग्रेजी में बताना शुरू किया। मैं ध्यान से सुनता रहा, 4-5 मिनट में मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। लगा कि वह कुछ भटक गया था। मैंने उसे टोका और वापस ट्रैक पर लाने की कोशिश की। उसने फिर से बताना शुरू किया, फिर भटक गया। मैं लगभग 20 मिनट तक उसे सुनता रहा, टोकता पूछता रहा...पल्ले कुछ नहीं पड़ा। हर बार लगता कि वह कुछ बहुत ही गूढ़ और महत्वपूर्ण बात कहने वाला है, फिर कुछ और कहने लगता।

20 मिनट बाद मैं एक्सक्यूज मी कहकर क्यूबिकल से बाहर आया और कंप्यूटर पर उसकी पास्ट मेडिकल हिस्ट्री चेक करने लगा। तबतक मेरा बेचैन ऑस्ट्रेलियन कंसलटेंट आया और पूछा, इतनी देर से एक बन्दे से इतनी क्या बात कर रहे हो? भीड़ है, जल्दी करो...क्या है इसे?

मैंने कहा, पता नहीं! उससे बात करके लगता है जैसे फ्रांज काफ्का की किताब पढ़ कर उठा हूँ।

उसने मुझसे कंप्यूटर ले लिया, और उसके पुराने क्लिनिक लेटर्स देखे...उसे सीजोफ्रेनिया था। वह पास के साइकियाट्री हॉस्पिटल से लाया गया था और उसके साथ के अटेंडेंट उसे छोड़ कर बाहर निकल गए थे फोन करने या सिगरेट पीने।

उस दिन मुझे वामपंथी साहित्य का एक रहस्य समझ में आया...वामपंथी साहित्य किसी मनोरोगी के प्रलाप जैसा होता है। गूढ़-गंभीर होने का भ्रम देता हुआ, अर्थहीन प्रलाप। उससे बात करके मुझे काफ्का अकारण ही नहीं याद आया।

आज गूढ़ गंभीर होने का भ्रम देने वाली पुस्तकों पर समय बर्बाद नहीं करता।

वामपंथी यूँ भी कुछ भी स्पष्ट नहीं कहते। यूँ ही गोल गोल लच्छे बनाते हैं...पर उनमें अर्थ खोजना गरई मछली पकड़ने जैसा है।

खैर, अपना यह संकल्प तोड़ते हुए कुछ वामपंथी साहित्य छू लेता हूँ आजकल। ऐसी ही एक किताब है, सैमुएल बैकेट का नाटक - वेटिंग फॉर गॉडो। बैकेट को नोबेल पुरस्कार मिला है और यह उसकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। करीब दो घंटे का नाटक है, दो अंकों का। दो लोग बैठ कर गॉडो की प्रतीक्षा करते हैं और वह नहीं आता। वे सारे समय कहते रहते हैं...क्या करें, करने को कुछ नहीं है...हम गॉडो की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सारे समय वे गॉडो की प्रतीक्षा में बैठे अर्थहीन बातें करते रहते हैं। थोड़ी देर के लिए दो और लोग आते हैं, वे भी अर्थहीन बातें करके चले जाते हैं। उसमें से एक लकी नाम का चरित्र है और वह लगभग पाँच मिनट का मोनोलॉग करता है, जो एक वाक्य के रूप में भी अर्थहीन है। आखिर में कुछ भी नहीं होता और गॉडो नहीं आता।

उस नाटक के बारे में किसी ने कहा है कि यह दुनिया का अकेला ऐसा नाटक है जिसमें 'कुछ नहीं' दो बार होता है। आप यह भी नहीं समझते कि गॉडो कौन था और ये दो लोग उसकी प्रतीक्षा क्यों कर रहे थे...

लोग तरह-तरह के अनुमान लगाते हैं और इस नाटक के अर्थ खोजते हैं। पर जब बैकेट से पूछा गया कि गॉडो कौन था, तो उसने कहा कि अगर उसे पता होता तो वह इसे अपने नाटक में ही बता देता।

और यह है एक नॉबेल पुरस्कार विजेता नाटककार की सबसे प्रसिद्ध कृति। सोचें यह साहित्य कितना बड़ा फ्रॉड है...

वेटिंग फॉर गॉडो सिर्फ एक अंतहीन प्रतीक्षा और निराशा की कहानी है। पूरा वामपंथी साहित्य ही निराशा और क्लेश की पूजा करता है। निराशा वामपंथ का बहुत ही सशक्त हथियार है। प्रख्यात वामपंथी विचारक जॉर्ज लुकास का कथन है - मैं निराशा की संस्कृति चाहता हूँ...एक ऐसा विश्व जिसे ईश्वर ने त्याग दिया हो...

37 : वामपंथी कला का फ्रॉड

ग्राफीति क्या होती है जानते ही होंगे। दीवारों पर स्प्रे पेंट से की गई छेड़छाड़। लंदन की दीवारों पर खूब मिलता है। कई बार ऐसी असंभव जगहों पर कि सोचना पड़ता है कि लिखने वाला वहाँ पहुँचा कैसे होगा। कुछ भी लिखा मिलता है...किसी का नाम, कोई गाली से लेकर पॉलीटिकल नारे। कई बार कई अच्छी कलाकृतियाँ भी दिखाई देती हैं।

यूँ तो ग्राफीति बनाना लगभग हर जगह गैरकानूनी है लेकिन दुनिया का कोई शहर नहीं होगा जहाँ यह मौजूद नहीं हो। कौंसिल भी इन्हें हटाने या पेंट करवाने के फेर में नहीं पड़ती। कुछ ग्राफीति तो इतने कलात्मक होते हैं कि उन्हें अपने आप में महान कलाकृतियों का दर्जा हासिल है।

इन ग्राफीति आर्टिस्ट्स में जो सबसे प्रसिद्ध नाम है, वह है इंग्लिश कलाकार बैंक्सी। हालाँकि यह उसका नाम था और बहुत समय तक लोग नहीं जानते थे कि यह व्यक्ति है कौन। पर आज उसकी पहचान मालूम है। वह 40-45 साल का व्यक्ति है, ब्रिस्टल का रहने वाला। उसकी ग्राफीति दुनिया के अनेक शहरों में है, और कई तो करोड़ों में बिकती है। वह जिसके घर की दीवार को ग्राफीति बनाने के लिए चुन ले उसके तो वारे-न्यारे। लोगों ने घर की पूरी दीवार तुड़वा कर बेच दी है, और उसकी ग्राफीति कई जगह म्यूजियम में रखी है।

उसकी बनाई ग्राफीति में कई संदेश छुपे बताए जाते हैं। उसकी बेहद प्रसिद्ध ग्राफीति में से एक है जिसमें एक छोटी-सी बच्ची एक सैनिक की तलाशी ले रही है, और सैनिक ने हथियार डाल दिये हैं। यह शांति का संदेश माना गया है। एक में एक औरत घर में झाड़ू देकर धूल को कार्पेट के नीचे डालती हुई दिखाई गई है और इसे व्यवस्था पर व्यंग्य माना गया है। गाजा पट्टी में एक दीवार पर बनाई हुई एक ग्राफीति में पत्थर फेंकते हुए एक फिलिस्तीनी प्रदर्शनकारी के हाथ में पत्थर की जगह एक गुलदस्ता दिखाया गया है...

हालाँकि मुझे बैंक्सी के पॉलीटिकल झुकाव के बारे में अलग से कुछ नहीं पता

लेकिन समझना कठिन नहीं है। यह स्टैण्डर्ड बाजारवाद का विरोध, शांति, समानता टाइप की लिबरल थीम है।

कुछ दिन पहले बैंक्सी की बनाई हुई एक ग्राफीति बहुत प्रसिद्ध हुई। एक छोटी सी बच्ची के हाथ से हार्ट की शेप का एक गुब्बारा उड़ कर जा रहा है जिसे वह पकड़ने का प्रयास कर रही है। उसकी इस ग्राफीति का एक प्रिंट पिछले दिनों साउथबी की एक नीलामी में एक मिलियन डॉलर में बिका।

लेकिन जैसे ही इस पेंटिंग की नीलामी पूरी हुई, एक अजीब घटना हुई जिससे सभी चकित रह गए। पेंटिंग खुद अपने फ्रेम से निकल कर टुकड़े-टुकड़े होने लगी।

बैंक्सी ने अपनी पेंटिंग के फ्रेम में ही एक श्रेडर लगा दिया था। रिमोट कंट्रोल से वह पेंटिंग उस श्रेडर से होकर गुजरी और उसके पतले-पतले चिथड़े फ्रेम से बाहर निकल कर लहराने लगे।

लेकिन तभी एक और कमाल हुआ। इस श्रेडर की मैकेनिज्म में कुछ खराबी आ गयी और वह पेंटिंग पूरी तरह नष्ट नहीं हुई। आधी पेंटिंग बच गई और बाकी आधी फ्रेम से लटकती रही। अब यह एक और ही अनूठी स्थिति थी और उस अधूरी फटी हुई पेंटिंग की कीमत पहले से भी ज्यादा हो गई।

पता नहीं, बैंक्सी का यही प्लान था या सचमुच ही श्रेडर में कोई खराबी आई थी। बैंक्सी का दावा था कि उसका यह प्लान कला की नश्वरता के बारे में एक स्टेटमेंट था... पर इस स्टेटमेंट देने के पहले वह एक मिलियन डॉलर लेना नहीं भूला। बल्कि उसके इस स्टंट ने उस कलाकृति की कीमत और बढ़ा दी।

कला की दुनिया ऐसे ही स्टंट से भरी पड़ी है। यहाँ कौन-सा कलाकार प्रसिद्ध हो जाता है, कौन महान कहलाता है इसका कोई हिसाब नहीं है। बैंक्सी की कलाकृतियाँ कम से कम देखने में सुंदर हैं, और उनमें टेक्निकल डिटेल्स हैं। लेकिन मॉडर्न आर्ट के नाम पर ऐसी कितनी ही कलाकृतियाँ और कलाकार हैं

जिनका कोई सर पूँछ है ही नहीं। पर वे महान गिने जाते हैं और करोड़ों में बिके।

कला, फैशन और मॉडलिंग...ये कम से कम तीन ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें प्रसिद्धि और महानता का रास्ता बेहद अबूझ है। जहाँ हजारों गुमनामी और गरीबी में दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाते वहीं किसी एक को वह दर्जा मिल जाता है कि उनका नाम बिकता है...उनके पेशाब से चिराग जल जाते हैं।

बैंक्सी के बारे में मुझे बेटे ने बताया। उसी ने पूछा, कोई कैसे किसी की कोई पेंटिंग करोड़ों में खरीद लेता है?

मैं इसका जवाब सोचने लगा। जब कोई एक मिलियन डॉलर लगा कर एक पेंटिंग खरीद लेता है तो यह एक इन्वेस्टमेंट है। एक मिलियन डॉलर कहीं गया नहीं है। वह पेंटिंग अपनी किसी कलात्मक गुणवत्ता के लिए नहीं भी तो सिर्फ एक मिलियन में बिकने की वजह से प्रसिद्ध हो जाती है। अब उसकी प्रसिद्धि में यह एक मिलियन का इन्वेस्टमेंट सुरक्षित है। कल को यह उससे ज्यादा में ही बिकेगी और काला धन छुपाने के यह बेहद आसान तरीका भी है। यह एक तरह की करेंसी है...कागज का टुकड़ा, जिसका मूल्य उसके सांकेतिक मूल्य से निर्धारित होता है।

पर इसमें उससे भी बड़ा एक इन्वेस्टमेंट सुरक्षित है। पॉवर का इन्वेस्टमेंट। जिस कला के पारखी आर्ट डीलर ने उस पेंटिंग और पेंटर को प्रसिद्ध बनाया उसके पास एक तरह की पॉवर आ गयी। वह किसी भी पेंटर को प्रसिद्ध बना सकता है। इसके साथ उस पेंटर में भी एक पॉवर आ जाती है...अब वह चूँकि प्रसिद्ध है इसलिए उसकी बात सुनी जाएगी और यह अपने आपमें एक बड़ी पॉवर है।

अब उस पेंटर में प्रसिद्धि की जो पॉवर है, उसका प्रयोग कहाँ होता है? चूँकि वह पेंटर अपनी प्रसिद्धि के लिए किसी और का ऋणी है, इसलिए वह अपनी पॉवर को अपने पैट्रन के हितों और रुचियों के अनुरूप ही प्रयोग करता है। इसलिए कौन-सा कलाकार प्रसिद्धि और महानता के इस अनुदान के लिए चुना जाता है, इसका चयन कैसे होता है इसके पीछे की विचार प्रक्रिया को समझना है तो यह

देखें कि वह महान कलाकार अपने प्रभाव का प्रयोग किस दिशा में करता है। बिल्कुल यही बात मॉडलिंग, फैशन और सिनेमा, साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में भी लागू होती है।

हम यह जानते हैं कि इन सभी क्षेत्रों में वामपंथी प्रभाव बहुत गहरा है। इन क्षेत्रों के जितने भी मूर्धन्य नाम हैं वे वामपंथी हैं। पर आप इस लॉजिक को पलट कर देख सकते हैं। बल्कि जो वामपंथी हैं, वे ही मूर्धन्य गिने गए हैं। इस चयन प्रक्रिया में यह बायस बिल्ट-इन है, समाहित है। प्रसिद्धि और प्रभाव का एक स्थापित प्रवाह है जो वाममार्ग में चलता है। अगर आप उस प्रवाह के साथ चलते हैं तो आपको अपने गुणग्राहकों, पैट्रन्स का वरदहस्त मिलेगा। बदले में आपको उनकी वांछित दिशा में चलकर, उनकी बोली बोलकर उनका ऋण चुकाना है। आपकी प्रसिद्धि आपके प्रभाव को बढ़ाती है और उनके प्रभाव और शक्ति को भी बढ़ाती है जिसने आपको प्रसिद्ध और प्रभावी बनाया. यह एक पॉजिटिव फीडबैक लूप है। जो इस लूप में काम नहीं करते या इससे बाहर निकल जाते हैं वे बाधा खड़ी करते हैं, उपद्रवी समझे जाते हैं और यह व्यवस्था ही उनका नाश कर देती है।

उदाहरण देखना है? जरा किसी ब्यूटी कॉन्टेस्ट को याद करें। लगभग 50-60 लड़कियाँ होती होंगी पहले राउंड में। सभी सुंदर, लंबी, छरहरी...उन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति किसी भी तरह से अंतर कर सकता है क्या? कोई बता सकता है कि उनमें से कौन-सी लड़की मिस यूनिवर्स या मिस वर्ल्ड बनेगी? पर किसी बेहद अबूझ प्रक्रिया से उनमें से तीन फाइनल राउंड के लिए चुनी जाती हैं। अब फाइनल राउंड में उनसे कोई एक प्रश्न पूछा जाता है, और उन्हें उस विषय पर एक उत्तर देना है। उनसे कोई भी प्रश्न पूछा जाए, उनका उत्तर लगभग एक ही होता है। उसमें विश्वशांति, समानता, वुमन एम्पावरमेंट जैसे कुछ बने बनाये फ्रेज होते हैं जिन्हें किसी तरह उस प्रश्न के खाँचे में फिट कर देना होता है। और उसमें से कोई एक लड़की विश्वसुंदरी चुन ली जाती है। जो किसी भी तरह उस

प्रतियोगिता की किसी भी और लड़की से कहीं से अलग-सी नहीं होती। सबकी एक जैसी देह-यष्टि, प्लास्टिक सर्जरी से एक जैसी बनाई हुई नाक और उभरे हुए होठ...और एक जैसी रटी रटाई सोच। अब उस विश्वसुंदरी का क्या होता है? साबुन-तेल सौंदर्य प्रसाधन बेचने और सिनेमा के पर्दे पर कपड़े उतारने के अलावा वह सुंदरी अगले एक वर्ष तक दुनिया में कुछ विशेष मुद्दों पर विशेष प्रचार करने के लिए अनुबंधित होती है...चाइल्ड लेबर, विमन्स एम्पावरमेंट, टॉलरेंस, सेक्युलरिज्म एंड डेमोक्रेसी जैसे शब्द इन्हें रटा दिए जाते हैं। यानी ये साबुन तेल लिपस्टिक हेयर डाई के साथ-साथ एक और चीज के ब्रांड एम्बेसडर होते हैं...पॉलीटिकल करेक्टनेस के।

और कभी-कभी इन्हें सुसाइड बॉम्बिंग कर के अपने मालिकों का कर्ज भी चुकाना होता है। मेरे शहर जमशेदपुर की दो बालाएँ याद आती हैं...प्रियंका चौपड़ा और तनुश्री दत्ता। अगर ये विश्व सुंदरियाँ घोषित नहीं होती तो शायद कमानी सेन्टर पर घूमते हुए उन्हें देखकर अधिक से अधिक एक बार सर घुमा कर देखता। पर ये विश्वसुंदरियाँ हैं...और इनमें से एक अपने वेब सीरीज में हिन्दू आतंकवाद की कहानी गढ़ती है...दूसरी ने अभी-अभी जीसस क्राइस्ट की शरण ली है और विवेक अग्निहोत्री पर अनर्गल और आधारहीन आरोप लगा कर वामियों की आँख की इस किरकिरी को निकालने का असफल प्रयास किया है।

कला, मॉडलिंग, फैशन और सिनेमा... वामपंथ के पॉल्ट्री फार्म हैं। ये वामपंथ की पाली हुई मुर्गियाँ हैं...ये अंडे देती हैं और वहाँ बैठे कुछ लोगों का काम होता है कि इन अंडों को सोने के अंडे घोषित करके उन्हें सोने के भाव बेचे...धंधा फायदे का है।

38: वामपंथ की नीयत

एक पीढ़ी पहले तक देश के कुछ कोनों में जाति के नाम पर एक वर्ग-विशेष के साथ कुछ अन्याय होता था...यह सत्य ही है। उसके निराकरण के लिए एक कानून की आवश्यकता महसूस की ही गयी होगी। तो एक कानून बना। वैसे किसी भी व्यक्ति के साथ कोई भी अन्याय हो तो उसके निराकरण के लिए ही तो कानून नाम की चीज होती है। यही तो कानून की भूमिका है। फिर वर्ग-विशेष के प्रति विशेष अन्याय की बात सोच कर विशेष कानून का क्या अर्थ है यह अलग बहस है। पर एक कानून बना, और मुझे नहीं लगता है देश का घोषित अन्यायी वर्ग उस अन्याय के आग्रह पर अड़ा रहा। किसी ने ऐसे किसी कानून का कोई मुखर विरोध नहीं किया।

पर उस कानून के पीछे की नीयत को देखिए। अगर एक समाज न्याय का राज्य स्थापित करना चाहता है तो उसे अन्यायी और पीड़ित के वर्ग-विभेद की आवश्यकता नहीं है।

यह कानून अन्याय को रोकने की नीयत से नहीं बनाया गया। यह कानून बिल्कुल इसी वर्ग-विभेद को स्थायी करने की नीयत से बनाया गया। यह पीड़ित को न्याय दिलाने के लिए नहीं, बल्कि शोषित और शोषक के वर्गों में समाज को विभाजित करके उनके बीच संघर्ष स्पॉन्सर करने के लिए किया गया था।

फिर भी भारतीय समाज मूलतः संघर्ष को पोषित करने वाला समाज नहीं है। पिछली दो पीढ़ियों में हमने इस अन्याय को छोड़ कर अपने व्यवहार और दृष्टिकोण में समूल बदलाव लाया है। सामान्यतः 'दलित' कहे जाने वाले वर्ग में भी संघर्ष का नैरेटिव कुछ खास पैठ नहीं बना सका। एक बहुत ही छोटा वर्ग जो विदेशी बौद्धिक शक्तियों और ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में धर्म से विमुख हो गया है, उन्हें छोड़ कर इस संघर्ष की चेष्टा को कुछ खास बल नहीं मिला।

अभी सुप्रीम कोर्ट ने इस कानून की कुछ धाराओं को संशोधन करने के निर्देश

दिए हैं। बात बिल्कुल तर्कसंगत लगती है। बिना प्राथमिक जाँच के किसी को अपराधी क्यों घोषित किया जाए?

पर पक्ष लेने के पहले दो मिनट रुकिए। इस आदेश की नीयत को भी देखिए। यह आदेश भी उसी न्यायपालिका की उपज है जो हर रोज देश में अव्यवस्था और असंतोष फैलाने वाले आदेश दे रही है। यह आदेश भी किसी विसंगति को, किसी अन्याय को दूर करने के लिए नहीं दिया गया है। पिछले चार वर्षों में देश में तोड़-फोड़ और हिंसा फैलाने में प्रयासरत शक्तियों को इसी हिंसा और तोड़फोड़ का एक और बहाना देने के लिए किया गया है। आज जो हुआ है, इसकी तैयारी बहुत पहले की गई है। चार वर्षों में इस मेकैनिज्म को पुख्ता किया गया है। रिजर्वेशन के नाम पर जाट, गुर्जर और पटेलों की हिंसा फैलाई गई, एक फिल्म के नाम पर राजपूतों की हिंसा फैलाई गई।

पर देश को विभाजित करने के जिस नैरेटिव पर सबसे ज्यादा इन्वेस्टमेंट किया गया था वह था दलित-सवर्ण का विभाजन। उसका कोई पक्का बहाना मिल नहीं रहा था। तो सुप्रीम कोर्ट से यह आदेश निकलवा कर यह बहाना खड़ा किया गया।

समाज में विभाजन और संघर्ष वामपंथी कथानक की खुराक है। ये लोग खुद ही एक ओर अन्याय को बढ़ावा देते हैं, दूसरी ओर इसके प्रतिकार का झंडा खड़ा करते हैं। ये ही कल 'करनी सेना' बनकर राजपूत सम्मान की लड़ाई लड़ रहे थे, ये ही आज दलित अधिकार का झंडा लिए खड़े हैं। आपको ये ही लोग ब्राह्मण बन कर दलितों को गालियाँ निकालते मिलेंगे, ये ही दलित बनकर ब्राह्मणों को विदेशी और यूरेशियन बुलाते मिलेंगे।

कल का बनाया हुआ एससी/एसटी एक्ट भी अपने समय के हिसाब से एक उचित कदम हो सकता था...पर उसकी नीयत गलत थी। आज का उसमें सुझाया गया सुधार भी तर्कसंगत है...पर उसकी भी नीयत गलत है। यह सब कुछ देश में

हिंसा और उपद्रव फैलाने का बहाना भर है जिसकी तैयारी वामी और जिहादी वर्षों से कर रहे हैं। इसलिए पक्ष लेने से पहले जरा सोचिए...तरबूजा चाकू पर गिर रहा है या चाकू तरबूजे पर?

39 : ये आपसे वे ही खेल खेलेंगे जो ये जीतेंगे

बचपन तो खेलने के लिए ही होता है। बचपन का ऐसा कोई दिन नहीं बीता होगा, जब दो घंटे खेलने नहीं गया हूँ।

घर के ठीक सामने बड़ा-सा मैदान था। उसकी एक-एक घास-पत्ती कंकड़-पत्थर से रिश्ता था। उस मैदान में हर शाम दर्जनों बच्चे खेलते थे। सबसे पहले निकलने वाला अक्सर मैं ही होता था।

उसमें एक समय में दो या तीन टीमें खेलती थीं। एक बंगाली बच्चों का अलग झुंड था। भद्रलोक थे, वे अलग फुटबॉल खेलते थे। दो और टीमें थीं। एक क्रिकेट टीम थी जिसमें बच्चों के पास बैट, ग्लव्स, पैड था और एक हमारी टीम थी, जिसमें हम चार-चार आने चंदा जमा करके बॉल खरीदते थे, पटरे की बैट का जुगाड़ करते थे...

फिर 1982 में मुम्बई में वर्ल्ड कप हॉकी हुई। मैंने उसके एक-एक सेकंड की कमेंट्री रेडियो में कान लगा के सुनी। एक और दोस्त था, सुनील। उसके पिताजी हॉकी के और ही शौकीन थे। वे छुट्टी लेकर मुम्बई गए थे वर्ल्ड कप देखने। उनके साथ सुनील भी वर्ल्ड कप देख कर आया था। वापस आकर उसे बारह रुपये की असली वाली सचमुच की हॉकी स्टिक भी मिली। उधर मैंने भी जंगल झाड़ से पुटूस के डंडे काट के अपनी हॉकी बना ली थी। तो हमलोगों ने अपनी हॉकी शुरू कर दी।

अब आगे की टीम बनाने की जरूरत थी। सबको कुछ खास रुचि नहीं थी। वे लोग क्रिकेट खेलने में रुचि लेते थे। तो रोज शाम का खेल शुरू होने से पहले वोटिंग होती, पॉलिटिक्स होती...लोगों को कन्विंस करना होता...सबको हॉकी खेलने के लिए तैयार करते। उनके लिए डंडे भी हमहीं काटते। सुनील के पास असली वाली स्टिक थी, फिर भी वह मेरे साथ जंगल झाड़ियों में जाता। हम लोग

पूरी टीम के लिए पुटूस और बेहाया के डंडों की स्टिक काट कर लाते थे, मैदान में चूने से डी-लाइन बनाते...शाम को मैदान में हॉकी हो, यह गरज हमारी ही थी।

धीरे-धीरे हमारी हॉकी टीम खड़ी हो गई। फिर हमारी देखादेखी दूसरी टीम ने भी दो चार हॉकी स्टिक खरीद ली। बीच बीच में वे भी हॉकी खेलने लगे। पूरे शहर में और किसी मैदान में हॉकी नहीं होती थी। बस, हम कुछ लोग ही खेलते थे।

फिर एक दिन हमने दूसरी टीम से मैच लिया। क्रिकेट में उनके पास स्टार खिलाड़ी थे, पर हॉकी में हम भारी पड़े। हमने उन्हें 17-1 से हराया।

अब आगे कोई मैच खेलने के लिए वे तैयार नहीं हुए। 17 गोल से हारने के लिए कौन खेलेगा। हमने फिर भी उन्हें मनाया। नियम बदले। पेनल्टी कार्नर का नियम ही हटा दिया, क्योंकि पिछले मैच में हमने 12 गोल पेनल्टी कार्नर से किये थे। फिर अपनी टीम से दो प्लेयर उन्हें उधार दिए। फिर वे खेलने को तैयार हुए। इस बार मैच बेहतर हुआ...हम सिर्फ 9-3 से जीते...

कौन-सी टीम जीत रही है इसके लिए सबसे जरूरी बात है...खेल कौन-सा हो रहा है। जिसे हॉकी खेलनी है वह अपनी बॉल लाता है, मैदान सजाता है, टीम बनाता है। सिर्फ अपनी प्रैक्टिस नहीं करता, दूसरे भी खेलें इसका भी इंतजाम करता है...उसकी गरज है कि उसकी पसंद का खेल खेला जाए...

दंगे, फसाद, संघर्ष, मनमुटाव, झगड़े...ये वामपंथियों के खेल हैं। उन्होंने इसका मैदान सजाया है, इसी के सामान जुटाए हैं, इसी की प्रैक्टिस की है...अपनी एक टीम खड़ी की है...जिन्हें नहीं भी खेलना है उन्हें भी पकड़-पकड़ कर अपनी टीम में घुसाया है...

अब इतनी तैयारी के बाद मैच खेलें तो किससे खेलें। देश तो शांति और प्रगति का खेल खेलने के मूड में है। संघर्ष और विनाश का खेल ये अकेले कैसे खेलें? किसी से तो मैच हो...

तो ये वामपंथी दूसरी ओर की टीम भी जुटाएँगे। उनके लिए भी खेल के सामान जुटाएँगे। उन्हें अपने खिलाड़ी और कोच भी देंगे...खेल बस उनकी पसंद का होना चाहिए...

अगर आप मैदान में उतरते हैं, चाहे किसी भी टीम से उतरें... आप उनका खेल ही खेल रहे हैं...स्कोर चाहे कुछ भी हो, आप अगर उनका खेल खेल रहे हैं तो आप हार चुके हैं...

40 : फेमिनिज्म : औरतों के हिस्से का कम्युनिज्म

लंच में डॉक्टर्स मेस में बैठा था। टीवी पर एक खबर आ रही थी नार्थ और साउथ कोरिया के बीच कुछ बातचीत चल रही है। मेरे बगल में एक कोरियाई लड़की बैठी थी। मैंने उसे टीवी की तरफ दिखाया – देखो, कुछ इम्पोर्टेन्ट हो रहा है क्या?

उसने दो मिनट न्यूज देखा, फिर कहा – आई डोन्ट केअर...लोग नार्थ और साउथ कोरिया के एक होने की बात करते हैं। मैं नहीं चाहती, मेरे साउथ कोरिया को अकेला छोड़ दो। हमें नार्थ से कोई लेना देना नहीं है। सिर्फ सरकार की बात नहीं है...वे बर्बाद लोग हैं। 60 सालों में कम्युनिज्म ने पब्लिक के दिमाग में इतना कूड़ा भर दिया है कि इनका कुछ नहीं हो सकता...मुझे इनकी कोई परवाह नहीं है, सारे के सारे अगर मर जाएँ आई डोन्ट केअर...

जिसने कम्युनिज्म को आसपास से देखा है और समझा है उसकी कम्युनिज्म के लिए यह घृणा सहज ही होती है।

पर पाँच मिनट बाद वह कुछ फेमिनिस्ट बातें करने लगी। मैंने पूछा, तुम्हें कम्युनिज्म से इतनी घृणा है पर दूसरी तरफ तुम एक लेफ्टिस्ट थॉट की इतनी बड़ी हिमायती हो..

उसने पूछा – कौन-सा लेफ्टिस्ट थॉट?

मैंने कहा – तुम्हें पता है? फेमिनिज्म औरतों के हिस्से का कम्युनिज्म है। इससे औरतों का सिर्फ उतना ही भला होगा जितना कम्युनिज्म से मजदूरों का हुआ...

क्या बकवास कर रहे हो? फेमिनिज्म इज अबाउट इक्वलिटी....

मैंने कहा – कम्युनिज्म भी समानता की ही बात थी...वो कहने की बात है। कम्युनिज्म भी समानता के लिए नहीं था, कनफ्लिक्ट के लिए था। और एक

खास पॉलिटिकल आइडियोलॉजी के लिए सिपाही रिक्रूट करने के लिए था। वही रोल फेमिनिज्म का है। जैसे कम्युनिज्म एक औद्योगिक सिस्टम में मजदूरों को संघर्षरत रखने के लिए बना है...वैसे ही फेमिनिज्म महिलाओं को परिवार नाम की संस्था से कॉन्फ्लिक्ट में खड़ा करने के लिए बना है।

थोड़ा सोचने के बाद उसने कहा - अगर है भी तो क्या है। अगर कहीं से कोई अच्छा विचार आता है तो क्या उसे इसलिए नकार दिया जाए कि वह वामपंथ से आया है?

वामपंथ की यह ताकत है। अगर आप उसे एक रूप में नकार देते हैं तो वह दूसरे रूप में घुस आता है। पर रूप बदलने से वामपंथ की नीयत नहीं बदल जाती। कम्युनिज्म के रूप में उन्होंने उद्योगों को नष्ट किया, फेमिनिज्म के रूप में परिवारों को नष्ट कर रहा है। अगर वामपंथ को समझना है तो उसकी नीयत को समझें...और उसे हर रूप में अस्वीकार करें। क्योंकि किसी की नीयत कभी नहीं बदलती...

41 : सामाजिक ऑटो-इम्युनिटी

इम्युनिटी क्या होती है? कैसे काम करती है?

शरीर की इम्युनिटी यानी रोग-प्रतिरोधक क्षमता के मूल में है 'सेल्फ' और 'नॉन-सेल्फ' की पहचान। शरीर के श्वेत रक्त कणों को शरीर के अवयवों की पहचान करा दी जाती है...और यह काम बिल्कुल फॉर्मेटिव स्टेज में हो जाता है। इसलिए जब शरीर किसी जीवाणु के संपर्क में आता है तो ये प्रतिरोधी कण उसकी पहचान 'नॉन-सेल्फ' या बाहरी के रूप में करते हैं और उसके विरुद्ध सक्रिय हो जाते हैं।

वहीं कुछ ऐसी भी बीमारियाँ हैं जो ऑटो-इम्युन बीमारियाँ कहलाती हैं। यानी शरीर की अपनी प्रतिरोधक क्षमता अपने ही अंगों या अवयवों के विरुद्ध सक्रिय हो जाती है। जैसे SLE और Rheumatoid Arthritis- इसमें शरीर के अंगों के विरुद्ध अपनी ही इम्युनिटी सक्रिय हो जाती है और इसके बहुत ही घातक परिणाम होते हैं...शरीर के जोड़ों से लेकर किडनी, हृदय, रक्त-कण... सबकुछ प्रभावित होता है।

वामपंथ वैसी ही एक घातक बीमारी है। इसे आप Induced Auto Immunity समझ सकते हैं। समाज के एक अंग को समझा दिया जाता है दूसरा अंग आपका अपना नहीं है, शत्रु अंग है। इसका सबसे विषैला रूप जो देखने को मिलता है, वह है नारीवाद।

एक महिला का बहुत ही आक्रोशित लेख पढ़ा। आक्रोशित हैं समाज में स्त्रियों की असुरक्षा से, स्त्रियों पर अत्याचार से...वहाँ से फिसल कर उनका आक्रोश आया है उन पुरुषों पर जो स्त्रियों पर मजाक बनाते हैं, स्त्रियों को नीचा दिखाते हैं, स्त्रियों से चिढ़ते और जलते हैं...

उनका आक्रोश अपराधियों की ओर निर्देशित नहीं है। उन अपराधियों की ओर जो हत्या, लूटमार और बलात्कार करते हैं, उनका आक्रोश निर्देशित है पुरुष-मात्र

की तरफ, पुरुषवादी समाज की तरफ।

यह गुस्सा गलत नहीं है, लेकिन गलत तरफ निर्देशित है। यह गुस्सा मेरा भी है, हम सबका है। उस हर पुरुष का है जिसके परिवार की लड़कियाँ असुरक्षित महसूस करती हैं। पर यह गुस्सा अपराधी तत्वों पर निर्देशित होने की बजाय पुरुषवादी समाज की ओर निर्देशित है। पुरुष अपराधी नहीं हैं। पर अपराधी पुरुष हैं...क्योंकि प्रकृति ने शारीरिक क्षमता और शक्ति औसतन पुरुषों को अधिक दी है...तो पुरुष को ही उन अपराधियों का प्रतिकार करने का पौरुष भी दिया है। एक 'पौरुष-वादी' समाज ही अपराधियों से लड़ने की क्षमता और साहस दिखायेगा ना।

किंतु नहीं...आपको उसी पौरुष के प्रति आक्रोश व्यक्त करने को प्रेरित किया जा रहा है। आपको उसी सुरक्षा कवच से निकाल कर आसान शिकार बनाने का व्यूह रचा जा रहा है। अगर नहीं समझ में आ रहा है तो ध्यान से सुनिए...उन पुरुषों के स्वरों को सुनिए जो आपके इस नारीवादी आक्रोश को हवा दे रहे हैं। ये ही वे स्वर हैं जो अपराधियों के अधिकारों के लिए एमनेस्टी इंटरनेशनल बना कर खड़े हैं। ये ही वे स्वर हैं जो जुडिशल एक्टिविस्ट बन कर अपराधियों को प्रश्रय दे रहे हैं। जब न्याय व्यवस्था पंगु हो जाये और इन अपराधियों के विरुद्ध समाज त्वरित न्याय कर दे तो ये ही वे स्वर हैं जो मॉब लींचिंग का रोना रोते हैं।

आपका आक्रोश हम सबका आक्रोश है। आपके पिता, पति, भाई... सबका आक्रोश है। समाज का पौरुष ही आपका सुरक्षा कवच है। आपके आक्रोश को अपने ही कवच की ओर निर्देशित करते स्वरों से बचिए...उन अपराधियों से बचिए जो आपके लिए सबसे बड़ा खतरा हैं। इस Induced Auto Immunity का इलाज कीजिये।

आपको बलात्कार के विरोध में कैंडल जलाते और उस बहाने से पितृसत्ता को कोसते और पूरी हिन्दू संस्कृति को गरियाते घृणा से भरे वामिये मिल जाएँगे। वहीं जैसे ही किसी बलात्कारी अपराधी को सजा मिलती हो, फाँसी दी जाए तो यही

वामी सबसे पहले मानवाधिकार के नाम पर उस अपराधी को बचाने के लिए भी झंडा उठाये दिख जाएँगे।

1990 के दशक में कलकत्ता में एक बहुत ही दर्दनाक रेप और मर्डर केस हुआ था, एक 15 साल की लड़की हेतल पारीक का। उसमें अभियुक्त धनंजय चटर्जी का अपराध सिद्ध हुआ और उसे 2004 में फाँसी दी गई थी। मुझे याद है, देश भर के कोमल हृदय मानवाधिकार कार्यकर्ताओं का दिल खून के आँसू रोया था धनंजय चटर्जी के लिए। उन लोगों ने धनंजय की फाँसी का खूब विरोध किया था।

यह रिश्ता क्या कहलाता है?

इन वामियों की, फर्जी मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और फर्जी नारीवादियों की समाधान में कोई रुचि नहीं है। इनकी रुचि सिर्फ संघर्ष और विवाद और उससे उत्पन्न विषाद के बाई प्रोडक्ट में है। इनको किसी भी विक्टिम के लिए कोई संवेदना नहीं है। इनके लिए हर अपराध, हर अत्याचार एक अवसर है अपनी विषैली विचारधारा को फैलाने का। एक पब्लिसिटी का अवसर है।

वे ही लोग हैं जो एक निर्भया के लिए कैंडल जलाते हैं, फिर एक अफरोज को छुड़वाने और बचाने के लिए तिकड़म और फर्जीवाड़ा करते हैं। उन जैसे लोग ही समाज के हर अत्याचार और अपराध को स्पॉन्सर करते हैं, क्योंकि वे इसी अपराध की पृष्ठभूमि में फलते फूलते हैं जैसे विष्टा में कुकुरमुत्ते। इसीलिए जब बलात्कारी और हत्यारे धनंजय चटर्जी को फाँसी दी गई थी तो इन्ही कॉमरेडों ने उसकी फाँसी का विरोध किया था।

ये लोग दुनिया भर में हत्यारों और अपराधियों और बलात्कारियों के सबसे बड़े अधिवक्ता भी हैं, क्योंकि अपराध और अपराधी ना रहें तो आपकी एक्टिविज्म की दुकान कैसे चले और समाज की व्यावस्था और समरसता से आपको शिकायत इसीलिए है, क्योंकि उसके रहते ना तो अपराध होंगे, ना बलात्कार और ना चलेगी आपकी कैंडल की दुकान।

42: फेमिनिज्म की कीमत

वामपंथी थॉट-वायरस आपको बिना आपकी जानकारी के कैसे पकड़ता है, पिछले दिनों इसका एक बेहतरीन उदाहरण देखने को मिला।

मेरे एक मित्र हैं। बहुत ही प्रिय, बहुत ही सहृदय। मेरे डॉक्टर मित्रों में शायद ही किसी और में इतना सामाजिक सरोकार, गरीबों की इतनी चिंता और उनके लिए व्यवहारिक उपाय करते और किसी को देखा होगा। भाजपा के लिए सक्रिय भी हैं, हिंदूवादी भी हैं, और अपने व्यक्तिगत जीवन में निष्ठावान सनातनी भी हैं।

डॉक्टर होने और सामाजिक जीवन में सक्रियता के अलावा उन्होंने अपने अत्यंत व्यस्त जीवन में एक और कार्य जोड़ लिया है...दिल्ली विश्वविद्यालय से लॉ की पढ़ाई भी कर रहे हैं।

एक दिन उन्होंने एक विषय पर मुझसे मेरे विचार माँगे। वे महिलाओं के लिए 'स्वास्थ्य के अधिकार' पर कानून बनाने के लिए विचार आमंत्रित करने के लिए दिल्ली यूनिवर्सिटी में एक सेमिनार आयोजित कर रहे हैं। उन्होंने एक कांसेप्ट नोट में अपनी चिंता शेयर की कि महिलाओं के स्वास्थ्य के अधिकार का विषय सरकारी कामकाज में नीति-निर्धारण से शुरू होकर मौलिक अधिकारों में शामिल होने का लक्ष्य होना चाहिए। स्त्रियों के स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ जानकारी और सुविधा के अभावों के कारण अपमानजनक और हानिकारक अनुभवों का कारण बनती हैं। इसमें अनेक सामाजिक बुराइयों का भी योगदान है जैसे कि पितृसत्तात्मक समाज और कन्यादान इत्यादि...

पढ़ते ही मेरा माथा ठनका - यह तो वामियों की भाषा है। स्त्रियों के स्वास्थ्य से जुड़ी समस्या को पितृसत्तात्मक समाज और हिन्दू रीति रिवाजों से जोड़ने की तकनीक पर तो बिल्कुल बाएँ हाथ का सिग्नेचर है। यह भाषा इनकी कलम से कैसे निकली? यह कलम की फिसलन है या हृदय परिवर्तन।

मैंने एक शाम फोन लगाया और उनसे दो घंटे बात की। उन्हें बिल्कुल भी भनक

नहीं थी कि इस सेमिनार के वामपंथी उद्देश्य भी हो सकते हैं। वे तो लॉ की वर्तमान प्रचलित भाषा बोल रहे थे।

उनसे लंबी बातचीत के बाद कुछ विषय निकल कर आये जिन्हें संक्षेप में यहाँ शेयर करना बनता है।

स्वास्थ्य सबकी चिंता का विषय है। स्त्रियों का स्वास्थ्य भी सबकी चिंता का विषय है। एक परिवार के पुरुष क्या चाहते हैं कि स्त्रियों को स्वास्थ्य सुविधाएँ ना मिलें? मैं एक पिता हूँ तो क्या मुझे अपनी बेटी को अस्वस्थ देख कर सुख मिलेगा? या कोई पति चाहता है कि उसकी पत्नी बीमार रहे? स्वास्थ्य एक 'आवश्यकता' है। फिर वे कौन हैं जो इसे एक आवश्यकता नहीं, 'अधिकार' सिद्ध करने के लिए तत्पर हैं? इससे उनका कौन-सा लक्ष्य सिद्ध हो रहा है?

भारत जैसे देश में जहाँ स्वास्थ्य सुविधाएँ सबको सुलभ नहीं हैं, इस नई परिभाषा के क्या वामपंथी स्कोप हैं?

जब आप किसी आवश्यकता को 'अधिकार' परिभाषित करते हैं तो यह भी सिद्ध होता है कि जिस किसी भी व्यक्ति की उस आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो रही है, वस्तुतः उसके अधिकारों का हनन हो रहा है। यानि उसके साथ अन्याय हो रहा है। चूँकि स्त्रियों की कुछ विशेष स्वास्थ्य समस्याएँ हैं, इसलिए उनकी स्वास्थ्य सुविधा संबंधी आवश्यकताएँ भी अधिक हैं। अब उनके लिए स्वास्थ्य सुविधाओं को विशेष रूप से एक अधिकार घोषित करने से विशेष रूप से उनके अधिकारों का हनन हो रहा है और यह समाज पितृसत्तात्मक है इसलिए अवश्य उनके साथ यह अन्याय पुरुषों का किया धरा है और हिन्दू रीति रिवाज जैसे कि कन्यादान विशेष रूप से पितृसत्ता को प्रतिध्वनित करते हैं, तो अवश्य हिन्दू धर्म स्त्रियों के प्रति अन्यायपूर्ण है...उन्हें सामान्य स्वास्थ्य सेवाएँ तक उपलब्ध नहीं कराता।

लीजिये, हो गया अत्याचार और अन्याय का एक नया नैरेटिव तैयार, जिसमें हमारे ही परिवार की स्त्रियाँ पीड़िता की भूमिका में हैं और इसमें विलेन कौन है?

आप और आपका चिरपरिचित विलेन हिन्दू धर्म।

स्त्रियों के स्वास्थ्य जैसे सीधे सरल से विषय को जिसकी आवश्यकता और प्राथमिकता पर कोई विवाद हो ही नहीं सकता, एक छोटे से निर्दोष से दिखने वाले कानून की मदद से वे सामाजिक विघटन और विभेद की कहानी में बदल दे सकते हैं। उनका यह टैलेंट ही उनकी विष की थैली है। और कानून के क्षेत्र में उनकी यह जबरदस्त घुसपैठ यूँ ही नहीं है। यही है उनका विष का दाँत।

आखिर न्यायपालिका को हर बात में घुसने की खुजली क्यों है?

समाज संचालन में न्यायिक व्यवस्था का एक सीमित रोल होना चाहिए। वह होना चाहिए कनफ्लिक्ट रेजोल्यूशन का। अगर दो व्यक्तियों में विवाद उत्पन्न हो तभी कोर्ट कचहरी बीच में आएगी ना। कोई किसी का कुछ लूट ले, छीन ले, कोई किसी को मार पीट दे तो कानून पुलिस का कोई मतलब है। अगर मुझमें और मेरे भाई में संपत्ति विवाद हो तो कोर्ट जाने की नौबत आएगी। कोर्ट संपत्ति पर फैसला दे सकती है, पर मेरे भाई से मेरा संबंध तो नहीं सुधार सकती। उससे पहले यह दो भाइयों के बीच संबंधों की विफलता होगी कि कोर्ट जाना पड़ जाए।

पर यह कोर्ट का सरदर्द नहीं होना चाहिए कि वे खुद ब खुद, 'सुओ मोटो' आकर हमारे बीच दखल दें। पर आज यही हो रहा है। कानून का काम विवाद सुलझाना नहीं, विवाद खड़ा करना हो गया है। हमने यह क्लीशे बहुत बार सुना है कि 'कानून का शासन' ही सभ्य समाज का तरीका है। पर मैं कहूँगा, 'कानून का शासन' असभ्य समाजों की आखिरी कोशिश है...सभ्य समाज तो स्वशासित होते हैं। कानून सभ्यता नहीं है। यह सभ्यता की विफलता है, प्लान B है।

पर अगर कानून खुद ही कहीं घुस रहा है तो इसे बिल्लियों के बीच घुसा बंदर समझिये। अब रोटी का क्या होगा, यह आप पहले ही सुन चुके हैं।

हमारे देश में कानून स्त्रियों के स्वास्थ्य की चिंता कर रहा है, और सुहृद सुधीजन

इस मामले में कानून बनाने पर चर्चा कर रहे हैं। तो मैं क्या मानूँ कि इन कानूनविदों की नीयत में खोट है? हो सकता है, ना हो...पर अक्सर अच्छी नीयत वाले ही 'रक्षा में हत्या' करते हैं। किसी की नीयत में झाँकने की सुविधा ना हो तो परिणामों को देख लीजिए। क्या परिणाम होंगे, यह जानना हो तो उन देशों को देख लीजिए जहाँ ये प्रयोग पहले किये गए हों।

स्त्री-उत्पीड़न की कथा कहने का काम बहुत पहले शुरू हुआ, पर इसके सामाजिक परिणाम अमेरिकी समाज में 1960 के दशक में दिखाई देने प्रारंभ हुए। अमेरिकी नारी मुक्ति आंदोलन, या वोमेन्स-लिब के बहुत सारे आयाम हैं, पर मूल सूत्र है पितृसत्तात्मक समाज का विरोध। तब से 'पितृसत्ता' शब्द एक गाली की तरह प्रयोग होता है और हम इससे मुँह चुराने लगे हैं।

यहाँ ये लिबरल तत्व कुछ यह कहते सुनाई पड़ रहे हैं कि यह पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों की सभी समस्याओं की जड़ है। यानि पुरुष अपनी किन्ही मूलभूत दानवी प्रवृतियों की वजह से स्त्रियों का उत्पीड़न करते हैं, उन्हें स्वास्थ्य और अन्य मौलिक अधिकारों से वंचित रखते हैं और उन्हें यह देना भी नहीं चाहते जब तक उन्हें बाध्य ना किया जाए...अगर मैं इसे व्यक्तिगत आरोप समझूँ तो इसका अर्थ हुआ कि मैं अपनी बेटी को स्वास्थ्य और उपचार की सुविधाएँ नहीं देना चाहता। क्यों? क्योंकि मैं किसी क्रूर, अमानवीय पुरुषवादी भावना से ग्रस्त हूँ और यह आप पर भी लागू होता है, यदि आप पुरुष हैं और यदि आप महिला हैं तो आपके पिता, पति, भाई पर भी लागू होता है।

इस उदारवादी प्रगतिशील एक्टिविज्म की सबसे बड़ी सफलता रही है, स्त्री और पुरुषों के पृथक और विपरीत हितों की व्याख्या। जैसे कि इस केस में यह बताया जा रहा है कि स्त्रियों का स्वास्थ्य स्त्रियों का हित है, और एक पितृसत्तात्मक समाज उनके हितों का विरोधी है।

हाँ, हमारा समाज पितृसत्तात्मक है। तो यह अंतर्निहित रूप से स्त्रीविरोधी हुआ।

पर समाज पितृसत्तात्मक क्यों है? यह हजारों वर्षों के साझा सांस्कृतिक अनुभव

से निकल कर ही बना है। क्या किसी ने स्त्रियों के सर पर बंदूक सटा कर इस पितृसत्ता की स्थापना की है? स्त्रियों और पुरुषों ने हजारों, संभवतः लाखों वर्षों में मिलकर यह समाज बनाया है...इसमें दोनों साझेदार रहे हैं। आप कहते हो कि यह सच नहीं है। दोनों साझेदार नहीं हैं। इसमें एक शोषक और दूसरा शोषित है।

तो चलिए, इसे बदल देते हैं। आपको पूरब की तरफ मुँह किया घर पसंद नहीं है तो आप उसे गिरा कर एक घर बनाना चाहते हैं जिसका मुँह पश्चिम की तरफ हो, क्योंकि पूरब वाले घर में दोपहर की धूप नहीं आती...वैसे तो इसका समाधान यह था कि पश्चिम की तरफ एक खिड़की खोल दी जाए पर आपका फैसला है कि आप इसे गिरा कर नया घर बनाएँगे।

अब आप यह जो नया घर बना रहे हैं, इसमें अन्याय और ज्यादतियाँ नहीं होंगी इसकी क्या गारंटी है? इसमें घर का मुँह पश्चिम की तरफ होगा तो पूरब से हवा और धूप कैसे आएगी? बल्कि आप तो पूरब के कमरे में पश्चिम से जाने वाला कोई दरवाजा, कोई गलियारा भी बनाने को तैयार नहीं हैं। आप पितृसत्ता को हटा कर मातृसत्ता स्थापित करेंगे तो वह भी उतना ही एकांगी नहीं होगा क्या?

या आपके पास कोई एक डिजाइन है...एक खुले हवादार घर का। जिसमें हर तरफ खिड़कियाँ और दरवाजे हों...सामने और पीछे हर-भरा बाग हो। एक स्विमिंग पूल और सॉना बाथ भी हो। स्मार्ट लाइटिंग और स्मार्ट सिक्योरिटी हो... एक ऐसा घर जिसको बनाने का किसी को आइडिया ही नहीं आया था आजतक...आपके पास डिजाइन है, और इस बेकार पुराने पितृसत्तात्मक घर को गिरा कर आप वह बनाने वाले हैं....रातों रात।

यूटोपिया... यूटोपिया...

वामपंथी यूटोपिया बेचते हैं...

पर उनको क्या कहें जो हर बार एक नया यूटोपिया खरीद लेते हैं?

100 साल पहले उन्होंने रूस में मजदूरों को समानता और फैक्टरियों के स्वामित्व

का सपना दिखाया था। बदले में उन मजदूरों को मिला क्या? अकाल और भुखमरी, और करोड़ों लाशें। उस सपने का नाम था कम्युनिज्म।

30 साल बाद फिर से चीन में किसानों को अपने खेतों के स्वामित्व का सपना बेचा गया। इस बार इसका नाम था माओवाद। उसी माओ के काल में 'ग्रेट लीप फॉरवर्ड' के बहाने से तीन करोड़ लोग मारे गए। फिर कल्चरल रेवोल्यूशन के नाम पर दो करोड़ लोगों ने जान गँवाई।

पर लोगों ने जहरीले सपने खरीदना और बेचना बंद नहीं किया। बस, उनकी दुकानों के नाम और साइन बोर्ड बदल गए। उनके खरीददार और शिकार भी बदल गए। वे रोज नए नए शिकार पकड़ते हैं।

उनके नाटक के इस नए अंक में सभी अभिनेताओं ने नई कॉस्ट्यूम पहन ली है। पीड़ित की भूमिका में महिला है, अत्याचारी की भूमिका पितृसत्ता की है, वह अन्यायपूर्ण व्यवस्था जिसका प्रतिकार होना है, वह परिवार है और पीड़ित के लिए झंडा खड़ा करने वाला क्रांतिकारी है लिबरल फेमिनिस्ट।

फेमिनिज्म स्त्रियों के हिस्से का कम्युनिज्म है।

और मानवता ने कम्युनिज्म के इस नए रूप का मूल्य क्या चुकाया है? उस कम्युनिज्म के शिकार तो करोड़ों हुए...इस कम्युनिज्म के दिये हुए जख्म गिनिए..

इसका शिकार है टूटे हुए करोड़ों परिवार, उन परिवारों के बच्चों का बचपन, ड्रग्स की आदत के शिकार अनाथ बच्चे, वह 15 वर्ष की लड़की जो स्कूल जाने की उम्र में प्रेग्नेंट हो गई है, वह अकेली माँ जो बिना बाप के बच्चे को पालने के संघर्ष में तनाव और अवसाद झेलती है, आत्महत्या करती है....और इस दिशाहीन पीढ़ी की उपज अगली पीढ़ी जो मानवता और सभ्यता की मूलभूत इकाई 'परिवार' के बिना बड़ी हो रही है। परिवार, वह समाजशास्त्रीय उपलब्धि जो मानव जाति ने हजारों वर्षों पहले खोज निकाली थी, आज फिर से खो गयी है।

क्या इन टूटते परिवारों के लिए जिम्मेदार फेमिनिज्म है? ठीक है, इन आंकड़ों की

ओर देखिये...अमेरिकी समाज में फेमिनिज्म 1960-70 में आया, 1980-90 तक पूरे पश्चिमी समाज की मुख्यधारा बन गया और आज तो महाशक्तियों के राष्ट्राध्यक्ष और राजपरिवार इसके सामने घुटने टेके हुए हैं।

इस दौरान पश्चिमी समाज में परिवार का क्या हुआ? अमेरिका में 1960 में तीन लाख नब्बे हजार तलाक हुए थे, 1990 में 1.17 मिलियन तलाक हुए। आज अमेरिकी समाज में 40-50% शादियों का अंत तलाक में होता है। जो दूसरी शादी करते हैं उनमें यह और ज्यादा है।

1960 में इंग्लैंड-वेल्स में 23,800 तलाक हुए थे। 1990 में यह संख्या 1,60,000 पहुँच गई, यानि लगभग सात गुना। जबकि 1960 में कुल साढ़े तीन लाख शादियाँ हुई थीं जो शताब्दी की अंत तक आते आते ढाई लाख सालाना हो गई। यानी हम उन संबंधों को गिन भी नहीं रहे जो शादी तक पहुँचे ही नहीं। आज इंग्लैंड में तलाक की दर 42% है और इनमें से 65% पेटिशन औरतों की तरफ से आते हैं। हम उन देशों की बात नहीं कर रहे जहाँ तीन तलाक बोलने से तलाक होता है। पूरे यूरोप की यही कहानी है। कैथोलिक देश स्पेन और पुर्तगाल में, हंगरी और चेक रिपब्लिक में 60% तलाक होते हैं, बेल्जियम में 70%।

यह गलती औरतों की नहीं है। यह एक पीढ़ी के भीतर व्यवहार में आया परिवर्तन है। लोगों का परिवार के प्रति, एक दूसरे के प्रति रवैये में आया परिवर्तन है। जिम्मेदारियाँ अब 50-50% बँटने लगी हैं। जबकि जरूरी नहीं है कि यह फॉर्मूला काम करे। 49-51% हो सकता है, 40-60% भी हो सकता है...यह प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता और लक्षणों पर निर्भर करता है कि दो लोगों के बीच कौन-सा समीकरण काम करेगा। पर जहाँ सबको अपना-अपना 100% देना था, वहाँ एक दूसरे से 50-50% लेने का गणित हावी है। लोग दोषमुक्त नहीं होते, लेकिन जब पूरी प्रवृति ही दोष ढूँढ़ने की हो तो कोई भी कैसे स्वीकार्य होगा?

किसी एक व्यक्ति के पारिवारिक कलह का मूल्य समाज कैसे चुकाता है? अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेंट की 2014 की रिपोर्ट इस 'फादरलेस जेनरेशन' का

लेखा जोखा देती है। 43% अमेरिकी बच्चे बिना पिता के बड़े होते हैं। 63% किशोर आत्महत्याएँ बिना पिता के बच्चों में होती हैं, 90% बेघर बच्चे बिना पिता के होते हैं। अपराधी आचरण वाले 85% बच्चे बिना पिता के बड़े होते हैं। और नारीवादी सुन लें – 81% बलात्कारी बचपन में बिना पिता के बड़े होते हैं। बिना पिता के पल रहे बच्चों के शोषण की संभावना सामान्य से दोगुनी होती है। स्कूल में पढ़ाई अधूरी छोड़ देने वाले बच्चों में 71% टूटे घरों के बच्चे होते हैं। अस्थिर संबंधों वाले घरों के बच्चों में ड्रग एडिक्शन की दर सामान्य से 68% ज्यादा होती है, और सिंगल अभिभावक वाले घरों के बच्चों में इसके ऊपर से और 30% जोड़ लीजिये।

बेटियों की स्थिति भी देख लीजिए। बिना पिता की बच्चियों में टीनएज में शादी करने की दर सामान्य से डेढ़ गुनी है और टीनएज में प्रेग्नेंट होने की दर सात गुनी है। अगर वे शादी करती हैं तो उनके तलाक की संभावना 92% ज्यादा है।

इंग्लैंड के समाज भी कुछ ऐसी ही तस्वीर पेश करता है। एक अभिभावक वाले परिवार के बच्चों में हिंसक अपराधों और नशे की आदत सामान्य से नौ गुनी ज्यादा है। बिना पिता के बड़ी हो रही बच्ची के टीनएज में प्रेग्नेंट होने या यौन शोषण और बलात्कार की शिकार होने की दर 8 गुनी ज्यादा है।

इसके सामाजिक और मानवीय मूल्य का तो अंदाजा लगाया ही नहीं जा सकता। इसका आर्थिक मूल्य क्या है? यू के में टूटे परिवारों की वजह से होने वाली हानि का वार्षिक अनुमानित मूल्य है 100 बिलियन, जी हाँ 100 बिलियन पौण्ड। तुलना के लिए समझिये, यहाँ की नेशनल हेल्थ सर्विस यानि पूरी तरह से मुफ्त स्वास्थ्य सेवा का कुल बजट है 125 बिलियन। सिर्फ सोशल केअर का खर्च है 22 बिलियन पौण्ड। तो यह है दुष्ट पितृसत्ता से मुक्ति की कीमत।

और यह कीमत इंग्लैंड और अमेरिका चुका पा रहा है, क्योंकि यह एक विकसित अर्थव्यवस्था है। यहाँ सरकारें कुछ जिम्मेदारी लेती हैं, हालाँकि सरकार पिता का विकल्प नहीं हो सकती। और इन देशों ने 50–60 साल पहले इस आग

से खेलना शुरू किया था। हमारे देश में यह आग अभी पहुँची है। आप कल्पना कर सकते हैं हमारा क्या होगा। उस दुष्ट पिता को हटा दीजिये, और पूरी सामाजिक व्यवस्था ही ध्वस्त हो जाएगी।

आप स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं? क्या कोई सरकार, कोई कानून कभी बिना परिवार को शामिल किए किसी को स्वास्थ्य सुविधा दे सकता है? हो सकता है, आप बहुत शोर गुल करके दो चार हस्पताल और बनवा दें...बीमार पड़ने पर मरीज को हस्पताल लेकर क्या वे वकील साहब जाएँगे? एक बीमार व्यक्ति, पुरुष या स्त्री, के घर का खर्च क्या जज साहब चलायेंगे? और एक बीमार बिटिया अपने पास अपने माता-पिता को खोजती है या उस न्यायविद को जिसने उसे वह स्वास्थ्य सेवा दिलाने का ठेका लिया है जो उसे उसका पितृसत्तात्मक परिवार नहीं देना चाहता?

43 - फेमिनिज्म की कार्ल मार्क्स केट मिलेट

नारीवाद की चर्चा एक महिला के बिना नहीं हो सकती - अमेरिकी फेमिनिस्ट एक्टिविस्ट केट मिलेट।

1970 में टाइम मैगजीन ने अपने कवर पर इस महिला का चित्र छापा था और उसे फेमिनिज्म का कार्ल मार्क्स कहा था। उसकी किताब 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' जो कोलंबिया यूनिवर्सिटी में पीएचडी के लिए उसकी डॉक्टोरल थीसिस थी, फेमिनिज्म की आसमानी किताब कही गयी।

केट मिलेट ने खुद फेमिनिज्म पर बहुत कुछ लिखा, फिल्में बनायीं और वह एक शिल्पकार भी थी। उसे 2013 में वीमेन्स हॉल ऑफ फेम में स्थान दिया गया। पर उसके बारे में जहाँ से सबसे नजदीकी जानकारी मिलती है, वह है उसकी बहन मैलॉरी मिलेट।

मैलॉरी खुद एक समय तक केट के साथ रही और स्त्रियों के अधिकारों के उसके प्रयासों में भी भागीदार रही। उसने केट की पहली फिल्म 'थ्री लाइव्स' में काम किया और उस फिल्म की एक पात्र भी वह खुद थी। पर वह उसके विचित्र व्यक्तित्व और विकृत विचारों को बहुत दिनों तक नहीं झेल पाई।

मैलॉरी लिखती है कि केट को मानसिक स्वास्थ्य की गंभीर समस्या थी, यह उससे मिलते ही स्पष्ट हो जाता था। जब वह फिल्म 'थ्री लाइव्स' बना रही थी तो उसकी जिद थी कि इस फिल्म में कहीं कोई पुरुष नहीं होना चाहिए। पर्दे पर नहीं, कहानी में नहीं, क्रू में भी नहीं। सेट पर खाना लेकर आने वालों में भी कोई पुरुष नहीं होना चाहिए। उस फिल्म में केट के साथ काम करना एक पीड़ादायक अनुभव था।

अपनी फिल्म की पहली स्क्रीनिंग उसने न्यू यॉर्क के एक थिएटर में की। थिएटर खचाखच भरा हुआ था और लोगों ने फिल्म की तारीफ की। उससे उत्साहित होकर केट ने फिल्म के दूसरे शो के लिए थिएटर बुक कर लिया। फिल्म के

खत्म होने के बाद उसने दर्शकों को संबोधित करना शुरू किया। थोड़ी देर लोगों ने उत्सुकता में सुना, फिर थोड़ी शालीनता और शिष्टाचारवश सुनते रहे...तबतक उन्हें समझ में आ गया था कि वह अनर्गल प्रलाप कर रही है। फिर कुछ लोग उठ उठ कर जाने लगे तो केट का चिल्लाना और प्रलाप और बढ़ गया। तबतक थिएटर में भगदड़ मच गई और लोग दरवाजे की तरफ भागे। फिल्म का दूसरा शो कैंसिल करना पड़ा। उसकी बहन मैलॉरी उसके साथ खड़ी रही पर अपनी बहन के व्यवहार पर शर्म से पानी-पानी होती रही।

उसे थिएटर से लेकर वह अपने अपार्टमेंट में आई। यह स्पष्ट था कि उसका मानसिक संतुलन बिल्कुल बिगड़ा हुआ था। उसे हरे-हरे रंग के लोग दिख रहे थे। वह सारी रात बड़बड़ाती रही, चक्कर काटती रही। सारी रात मैलॉरी भी डर के मारे सो नहीं पाई, और अपने परिवार वालों को फोन करके मदद माँगती रही। उसे डर लग रहा था कि यह कहीं जाकर किसी का खून ना कर दे।

पर केट मिलेट की मदद करना आसान नहीं था। वह एक खूँखार किस्म की सिविल राइट्स एक्टिविस्ट और फेमिनिस्ट थी जिसका शौक ही था व्यवस्था से टकराना। किसी की क्या मजाल कि उसके सामने खड़ा हो ले? वह किसी भी साइकाइट्री ट्रीटमेंट के विरुद्ध थी। उसका मानना था कि साइकाइट्री इंस्टीट्यूशन सिर्फ लोगों के दमन का साधन हैं। लोगों की स्वतंत्रता, उनकी इंडिविजुलिटी को उनका पागलपन कह कर उनके स्वतंत्र विचारों को कुचला जाता है। वह अमेरिका के 'एन्टी-साइकाइट्री' आंदोलन की भी नेत्री थी। वह सिविल राइट्स एक्टिविस्ट की भीड़ जुटा कर सारे साइकाइट्री हस्पतालों में भर्ती मरीजों को जबरदस्ती छोड़ने का आंदोलन चला रही थी और अमेरिका को हजारों मानसिक रोगियों को मजबूरन छोड़ना पड़ा जिन्हें इलाज की जरूरत थी और जो समाज मे सुरक्षित नहीं थे।

और वह सेलिब्रिटी थी। एक प्रसिद्ध पुस्तक की लेखिका थी। उसका जबरदस्त नुइसेन्स वैल्यू था। बेवजह झगड़े फसाद करने का उसका रेपुटेशन था जिससे

सभी भागते थे। घर वाले भी। उसका व्यवहार हमेशा से असंतुलित और हिंसक था। वह एक सैडिस्ट थी, उसे लोगों को दुख देने में आनंद आता था। उसकी मानसिक हालात देख कर उसके घर वालों ने उसका इलाज करवाने का बहुत प्रयास किया पर सफलता नहीं मिली। अपनी किताबों में भी उसने अपने परिवार का बहुत ही खराब चित्रण किया है। अपने परिवार के सभी सदस्यों को क्रूर, असंवेदनशील, शोषक और अन्यायी बताया है जो उसकी पॉलिटिक्स से घृणा करते थे और उसे लॉकअप में डाल देना चाहते थे।

एन्टी साइकाइट्री मूवमेंट अकेले केट मिलेट का आंदोलन नहीं था। उस समय के बहुत से साइकेट्रिस्ट भी इस बात से सहमत थे कि साइकाइट्री वार्ड और हस्पतालों में मरीजों के साथ होने वाले व्यवहार में सुधार की जरूरत है। पर उनमें से कुछ थे जिनका कहना था कि मनोरोग जैसी कोई चीज है ही नहीं, यह सिर्फ लोगों पर शासन करने का एक और बहाना है। थॉमस जाज नाम के साइकेट्रिस्ट ने 'मिथ ऑफ मेन्टल इलनेस' नाम की किताब तक लिख डाली।

तब साइकाइट्री की बहुत ज्यादा दवाएँ उपलब्ध भी नहीं थीं। क्लोरप्रोमाजीन पहला एन्टी-सायकोटिक था जो 1950 में खोज गया, हलोपेरिडॉल 1958 में। 1970 के दशक तक और कोई एन्टी सायकोटिक उपलब्ध नहीं था। इलेक्ट्रो-कनवलसिव थेरेपी यानी बिजली के झटके दिए जाते थे (जो आज भी जरूरी होने से दिए जाते हैं और बहुत ही कारगर हैं)। दवाओं के अभाव में मरीजों को अक्सर बाँध के रखा जाता था। पर जैसे-जैसे नए उपचार आते गए, यह सब बदलता गया।

आज इतनी सारी दवाइयाँ उपलब्ध हैं, बिजली के झटकों और बाँधने की नौबत बहुत कम आती है। पर मजे की बात देखिये, इन सारे सुधारों के श्रेय लेने ये एन्टी-साइकाइट्री आंदोलन वाले चले आते हैं...वे भी जो इसे एक मेडिकल फील्ड मानते ही नहीं थे। जिनका कहना था कि यह एक मिथ है। क्या उनमें से किसी ने किसी भी एक एन्टी-सायकोटिक या एन्टी-डिप्रेसेंट का अविष्कार

किया? किसी ने कोई शोध किया? अगर उनकी बात मानी जाती तो यह सब एक मिथ था, साइकाइट्री नाम का विषय होता ही नहीं। फिर ये सारे सुधार कैसे होते?

लेकिन अगर आप उनका लिखा पढ़ेंगे तो वे यह बताने से नहीं चूकते कि यह सारे सुधार उनके प्रयासों से हुए हैं। यह वामियों कि खास तरकीब है। वे एक तरफ तो अव्यवस्था और अराजकता खड़ी करते हैं। दूसरी तरफ व्यवस्था में हुए सारे सुधारों का श्रेय लेने का दावा भी करते हैं। जबकि सच यह है कि साधनों और सुविधाओं के साथ ये सारे सुधार यूँ भी होने थे। अगर उन्होंने कुछ किया तो हजारों मरीजों को इलाज से वंचित किया, दर्जनों खतरनाक रूप से बीमार लोगों को समाज में छोड़ कर अव्यवस्था और हिंसक घटनाओं को बढ़ावा दिया और यही उनका उद्देश्य था।

एन्टी-साइकाइट्री आंदोलन कोई दीर्घकालिक आंदोलन नहीं रहा। पर यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इस बहाने से वामपंथ का मनोरोग से एक महत्त्वपूर्ण संबंध स्थापित होता है...इसे आप चोर की दाढ़ी का तिनका समझ सकते हैं। क्योंकि आखिर वामपंथ एक संस्कारजन्य मनोरोग ही तो है।

44 - केट मिलेट के शिकार

अमेरिकी वामपंथी नारीमुक्ति एक्टिविस्ट केट मिलेट की बहन मैलॉरी मिलेट अपने एक बहुचर्चित लेख में अपनी बहन को कुछ इस तरह याद करती है...

जब मैलॉरी स्कूल की पढ़ाई खत्म करके जा रही थी तो उसकी एक टीचर ने उससे पूछा कि आगे उसका क्या करने का इरादा है? उसने जवाब दिया कि वह यूनिवर्सिटी जा रही है।

उसकी टीचर दुखी हो गई। उसने कहा - इसका मतलब तुम चार साल बाद एक नास्तिक और कम्युनिस्ट बनकर निकलोगी।

तब लड़कियों का झुंड इस बात पर हँस पड़ा और यह सोचते हुए वहाँ से गया कि यह कितनी दकियानूसी औरत है।

पर वह यूनिवर्सिटी गई और चार साल बाद बिल्कुल वही बनकर लौटी - कम्युनिस्ट और नास्तिक। अपनी बड़ी बहन केट की तरह, जो छह साल पहले वहाँ से लौटी थी।

खैर, कई साल बाद वह दक्षिण पूर्व एशिया से लौटी जहाँ वह अपने पहले पति के साथ रह रही थी। अब वह तलाकशुदा थी, एक बच्ची की माँ थी, और दुखी थी। जब उसकी बहन केट ने उसे अपने साथ रहने का निमंत्रण दिया तो उसने इसे एक सुयोग समझ कर स्वीकार कर लिया, क्योंकि इतने वर्षों तक दूर रहकर वह भूल गयी थी कि केट की मानसिक अवस्था क्या थी।

केट उस समय एक छोटे से लॉफ्ट फ्लैट में रह रही थी और अपनी थीसिस और पहली किताब 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' लिख रही थी। केट ने मैलॉरी को अपने साथ अपनी एक मित्र के फ्लैट पर एक मीटिंग में निमंत्रित किया। यह उनका 'जागरूकता समूह' (Consciousness raising group) था, जो बिल्कुल एक कम्युनिस्ट एक्सरसाइज था, माओवादी चीन की तर्ज पर। मीटिंग की शुरुआत एक चर्च की कार्यविधि की तरह शुरू हुई। पर यह मार्क्सवाद था, वामपंथ का

चर्च। केट ने कार्यक्रम की शरुआत एक प्रार्थना की तरह कुछ इस वार्तालाप के साथ कि, जिसमें सभी स्कूल के बच्चों की तरह समवेत स्वर में भाग ले रहे थे...

केट ने पूछा– 'हमलोग आज यहाँ किसलिए जुटे हैं?'

जवाब में सभी बोले – 'क्रांति करने के लिए।'

– कैसी क्रांति?

– सांस्कृतिक क्रांति।

– कैसे करेंगे यह सांस्कृतिक क्रांति?

– अमेरिकी परिवार को नष्ट करके।

– परिवार को कैसे नष्ट करेंगे?

– पितृसत्ता को नष्ट करके।

– पितृसत्ता को कैसे नष्ट करेंगे?

– उसकी शक्ति छीन कर।

– उसकी शक्ति कैसे छीनेंगे?

– मोनोगैमी को खत्म करके।

– मोनोगैमी को कैसे खत्म करेंगे?

जो उत्तर आया उसे सुनकर मैलॉरी पर जैसे वज्रपात हो गया।

– स्वच्छंदता (प्रोमिस्क्यूइटी), अश्लीलता, वेश्यावृति और समलैंगिकता का प्रचार करके...

उसके बाद उन लोगों ने लम्बी चर्चाएँ की कि इन उद्देश्यों को कैसे पूरा किया जाए। उन्होंने 'नेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ वीमेन' बनाने पर चर्चा की और हर अमेरिकी संस्था में घुसपैठ करने की योजनायें बनायीं....शिक्षा संस्थान, हाई

स्कूल, शिक्षा बोर्ड, लाइब्रेरी बोर्ड, ज्यूडिशरी, राजनीति...

मैलॉरी को लगा जैसे कि कुछ नशेड़ी कोकेन के नशे में बकवास कर रहे हैं, या जैसे कुछ स्कूल के बच्चे कोई बैंक लूटने की योजना बना रहे हैं। उसने इन सबको हवा हवाई समझ कर उड़ा दिया।

लेकिन उसके बाद उसकी पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' छपी, उसे खूब मीडिया कवरेज मिला, टाइम मैगजीन के कवर पर उसकी तस्वीर छपी और वह नारी मुक्ति की कार्ल मार्क्स गिनी गई। उसकी थीसिस को पढ़ कर लड़कियाँ फेमिनिस्ट बन रही थीं।

और उसकी थीसिस क्या थी? –'परिवार शोषण का तंत्र है, इसमें पुरुष शोषक है, स्त्री और बच्चे शोषित हैं। स्त्री के लिए विवाह एक वेश्यावृति है...एक व्यक्ति के लिए वेश्यावृति। बल्कि वेश्यावृति एक स्त्री के लिए मुक्ति का मार्ग है। यह उन्हें शक्ति देता है, उन्हें उनके शरीर पर अधिकार देता है, स्त्री को पुरुष की दासता से मुक्त करता है। जैसे दूसरे प्रोफेशन हैं, वैसे ही वेश्यावृति है...

और यह सब गंदगी देखते-देखते यूनिवर्सिटी और स्कूलों में भर गई। यूनिवर्सिटी में वीमेन्स स्टडी नाम का कोर्स पढ़ाया जाने लगा, जिसके बारे में माँ-बाप सोच भी नहीं सकते थे कि यह कैसे जहर की खेती है। सीधी सादी, कोमल भावनाओं और सौंदर्य से भरी हुई किशोरी बालिका यूनिवर्सिटी पहुँचती है और यह पाठ पढ़ती है। उसकी आत्मा की हत्या हो जाती है, वह शरीर बन जाती है। प्रेम मर जाता है, सेक्स रह जाता है। नारीवाद के नाम पर नारीत्व की हत्या हो जाती है।

मैलॉरी ऐसी कितनी ही औरतों का जिक्र करती है जो जवानी में इस धोखे में पड़ीं, और अभी 60-70 साल की उम्र में तकिए पर रोती हैं। अकेली, दुखी... सोचती हैं कि उनका परिवार कहाँ है? कहाँ हैं वे बच्चे जो उन्होंने नहीं पैदा किये...कहाँ हैं वे नाती-पोते जो नहीं हुए। कितनी ही औरतें जब मैलॉरी से मिलती हैं और उन्हें पता लगता है कि वह प्रसिद्ध केट मिलेट की बहन है तो वे कहती हैं - तुम्हारी बहन ने मेरी बहन की जिंदगी खराब कर दी...या, तुम्हारी

बहन ने मेरी मित्र का घर तोड़ दिया...उसके बच्चे अनाथ हो गए, उसका हस्बैंड पागल हो गया। उसे समझ में ही नहीं आया कि एकाएक कौन-सा ग्रहण लग गया। सबकुछ हँसी-खुशी चल रहा था और एक दिन उसके हाथ में तुम्हारी बहन की लिखी किताब पड़ गयी।

और औरतों को कौन-सी ताकत मिल गयी जो उनके पास नहीं थी। औरतें हमेशा शक्तिशाली थीं, दुनिया को औरतें ही चलाती आयी हैं। आदमी औरत को खुश करने के लिए कुछ भी करता है। भगवान तक की बात काट देता है, पर औरत की नहीं काटता। एडम ने ईव के कहने पर सेव खाया था ना...

उधर अमेरिका कोल्ड-वॉर जीत कर खुश हो रहा था, कि बिना एक गोली चलाये उन्होंने कम्युनिज्म को हरा दिया। रूस को तोड़ दिया, बर्लिन वॉल गिरा दी। और इधर वामपंथ हँस-हँस कर दोहरा हो रहा था...बिना एक गोली चलाये उन्होंने पूरे पश्चिमी समाज को मार डाला...उनके परिवार पर, उनकी स्त्रियों पर कब्जा कर लिया...उनके मर्मस्थल को कुचल डाला।

45 : पिता पुरुष है इसलिए तिरस्कार के योग्य है?

पितृसत्ता क्या है? कैसे यह स्त्री का शोषण करती है? कैसे पितृसत्ता समाज में बलात्कार के लिए जिम्मेदार है?

मुझे नहीं पता!

पर पितृसत्ता क्या होती है, इसका कुछ-कुछ अनुभव है। मेरे घर में पिता की सत्ता थी, इसमें कुछ शक नहीं है। हम सब भाई बहन पिता से थर-थर काँपते थे। सारा शहर चाहे जो करे, हमें सूर्यास्त से पहले घर में घुस आना होता था। हाथ पैर धोकर सात बजे से पहले पढ़ने बैठ जाना होता था।

पता नहीं, लोग हत्या या बलात्कार के लिए पितृसत्ता को कैसे दोष देते हैं। यहाँ तो पिता का यह आतंक जाना है कि पड़ोसी के बागान से अमरूद चुराते हुए पकड़े जाने पर भी पिटाई होती थी। एक बार स्कूल में बाथरूम के पीछे की नाली में फेंकी हुई एक कलम उठा लाया था तो घर में एक घंटे जिरह झेलनी पड़ी थी कि कहीं चोरी करके तो नहीं लाया। कभी स्कूल से भाग कर कल्पना टॉकीज में सिनेमा का पोस्टर देखने तक नहीं गया। उसपर भी किसी ने मेरे लँगोटिया दोस्तों को स्कूल से भागकर सोमवारी के मेले में मंदिर में घूमते देख लिया तो उसकी भी रिपोर्ट हो गई और संगति के धोखे में हम भी पिट लिए। कभी मुँह से कोई अपशब्द, मामूली-सी एक गाली तक नहीं निकली जबतक पिता की सत्ता में रहे।

यह नहीं कि बदमाशियाँ नहीं कीं, पर तभी जब पिता की सत्ता से छूट के हॉस्टल गए। तभी पहली बार अश्लील फिल्में देखीं या किसी लड़की पर फब्तियाँ कसीं। वह भी पिता की सत्ता का उल्लंघन ही था, और यह ख्याल जूते में पड़े कंकड़ सा चुभता रहा।

पिताजी आज 86 वर्ष के हैं। अब छड़ी लेकर चलते हैं। अब उनका आतंक नहीं महसूस होता। लेकिन उनकी बनाई हुई अनेक लक्ष्मण रेखाएँ हैं जिन्हें कभी पार नहीं करूँगा।

पिता को भी मैंने हमेशा अपने ही एक अनुशासन से बँधा पाया। जीवन में उन्होंने कोई व्यसन नहीं किया, कभी एक पान तक नहीं खाया। बच्चों को पढ़ाने से बड़ी उनकी कोई प्राथमिकता नहीं रही। अपने ऊपर एक पैसा खर्च करते उन्हें नहीं देखा। जिंदगी भर सायकिल से चले, उनकी अकेली चप्पल की जोड़ी हमेशा टूटी ही दिखी। सरकारी फैक्ट्री के एकाउंट डिपार्टमेंट में जिंदगी भर काम करके भी उन्होंने कभी एक पैसे की गलत कमाई नहीं की। कभी किसी का एक पैसा अपने ऊपर नहीं रखा। एक दिन सुबह-सुबह उन्होंने मुझे पड़ोस के कृष्णन अंकल के पास भेजा, किसी कारण से उनसे 25 पैसे लेने पड़ गए थे ऑफिस में।...वह लौटाने के लिए। जितनी परेशानियों और अभावों के बावजूद वे हमेशा आशावान रहे और चैन की नींद सोते रहे...उसका दशांश भी मैं तो नहीं झेल सकता।

पिता सिर्फ परिवार का पालक रक्षक ही नहीं होता, समाज का निर्माता भी होता है। वह भविष्य की ईटें अपने व्यक्तित्व की आँच में पकाता है और युग की नींव में रखता है। पितृसत्ता को चुनौती यूँ ही नहीं दी जा रही। उन्हें पिता के पुरुषार्थ से भय है कि वह अपनी संततियों के भविष्य के लिए आखिरी साँस तक लड़ेगा। इसीलिए उसकी सत्ता की वैधता को चुनौती दी जा रही है।

मुझे तरस आता है उन वामियों-वामिनियों पर जो बलात्कार जैसे जघन्य पापों के लिए पितृसत्तात्मक समाज को दोष देते हैं। ऐसे वामी सँपोलों को उनकी माँओं ने कैसे पिता के वीर्य से पाया होगा, यह सोच कर घिन आती है।

46 : विवाह - समानता नहीं, समन्वय

हिन्दू समाज में विवाह की प्रकृति फेमिनिस्टों के लिए गंदगी फैलाने का खुला मैदान है। पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध स्त्रियों की स्वतंत्रता, स्वच्छन्दता, सबलता का झंडा आसानी से आज की लड़कियाँ पकड़ रही हैं और उनके जाल में फँस रही हैं।

सिर्फ विवाह में ही नहीं, किसी भी सामाजिक संबंध में समानता नहीं होती। समानता लक्ष्य भी नहीं होता। समानता = न्याय....यह समीकरण भी सही नहीं है। समानता नहीं, समन्वय और यह समन्वय पुरुष और स्त्री, दोनों के व्यक्तित्व के फंक्शन्स का रिजल्ट है। किसी परिवार में पुरुष की प्रधानता होती है, कहीं स्त्री का प्राबल्य होता है। बल्कि हर परिवार में अलग-अलग विषयों पर कभी स्त्री प्रभावी होती है, कहीं पुरुष प्रमुख होता है...पर समानता तो कभी भी नहीं होती, कहीं नहीं होती।

क्या विवाह जैसे संबंध ऐसे होते हैं और होने चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी संस्कार सीमाओं को घेर कर उसकी रक्षा करे? अपनी अपनी बाउंड्री बाँध कर रहे? विवाह पानी में नमक के घुलने का खेल है...देख कर लगता है कि पानी में घुल कर नमक का अस्तित्व मिट गया। पर जितना नमक का रूप बदलता है, उतना ही पानी का स्वाद भी बदलता है। जिन्हें नमक बनने से शिकायत है, अपने अधिकार की लड़ाई लड़नी है...अपनी अलग पहचान बहुत ही प्यारी है...उनका रेत बनकर रहने का अधिकार है। रेत पानी में नहीं घुलती... आँख में चुभती भर है। समुंदर के किनारे रहती है। उसपर लेट कर सैलानी धूप का मजा लेते हैं, छुट्टियाँ बिताते हैं। वह रेत सैलानियों के मौज मजे के लिए अच्छी होती है...पर पानी से उसका ब्याह नहीं होता...रेत और पानी की तरह रहने को विवाह नहीं कहते। विवाह में तो घुलना होता है, मिटना होता है, रूप, रंग, स्वाद बदलना होता है। समन्वय खोजो, समानता नहीं। उन वामपंथियों से बचो जो तुम्हें तुम्हारे पानी से अलग कर रहे हैं...तुम्हें सैलानियों के मजे के लिए रेत बना देना चाहते हैं।

47: दाएँ और बाएँ हाथ की लड़ाई

जैसाकि एनएचएस में सामान्यतः अनुपात है, मुझे तो लगता है कि 60-70% महिलाएँ ही हैं। तो साथ में हमेशा जूनियर्स लगभग लड़कियाँ ही होती हैं। बच्चियाँ कह लीजिए...उम्र में आधी हैं। इनकी बातें सुनता हूँ, इनके दिमाग में क्या चल रहा है इसकी कुछ खबर मिलती है।

एक कॉमन थीम है फेमिनिज्म...बराबरी का कीड़ा। उस दिन एक लड़की दुखड़ा रो रही थी कि उसके बॉयफ्रेंड ने कहा कि उसकी 'एक्स' उसके लिए खाना बनाती थी, उसकी लॉन्ड्री कर देती थी और कपड़े प्रेस कर देती थी। यह लड़की दुखी थी कि लड़कियों से यह एक्सपेक्टेशन क्यों है? उसने मुझसे पूछा, क्या तुम अपने घर में खाना बनाते हो? क्या तुम्हारे घर में बराबरी का रिश्ता है?

मैंने कहा - मुझे नहीं पता मेरे घर में पति पत्नी में बराबरी है या नहीं...पता नहीं, मैंने हिसाब नहीं लगाया। शायद ज्यादा काम वह ही करती है...जो मुझसे बन पड़ता है, मैं कर देता हूँ। पर हम जो भी करते हैं, प्यार से करते हैं। यह हिसाब नहीं लगाते कि बराबरी हासिल हुई या नहीं... हमारा गोल प्यार और खुशी है, समानता नहीं है। रिश्ते में जिसने भी गणित लगाया, वह हमेशा घाटे में ही रहा है। तुम्हारे इस फेमिनिज्म ने लाखों घर तोड़े हैं, करोड़ों को बसने से रोका है...

फेमिनिज्म इनकी बूढ़ी गइया है। फेमिनिज्म को कुछ मत बोलना...बच्ची तमतमा गई...तुम्हें नहीं पता, दुनिया में कितनी जगह औरतों के साथ क्या अत्याचार होता है...पहले औरतों को कितने कम राइट्स थे...

यह सही है कि यूरोप और अमेरिका तक में औरतों को 60 तक उतने अधिकार नहीं थे...पर उनकी स्थिति को बदला फेमिनिज्म ने नहीं है। बदला है शिक्षा ने, संसाधनों की उपलब्धता ने, आर्थिक विकास ने। आज तुम मेरे बगल में बैठी हो, बराबरी से...इसलिए कि मैं भी डॉक्टर हूँ और तुम भी डॉक्टर हो...और तुम डॉक्टर इसलिए हो क्योंकि तुम्हारे माँ-पिता ने तुम्हें पढ़ाया...यह उपलब्धि है

तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की...बीच में फेमिनिज्म कहाँ से आ गया? मैं अपनी बेटी को प्यार करता हूँ, चाहता हूँ कि वह पढ़े और सफल हो...अब उसे यह पाने के लिए फेमिनिस्ट होने की जरूरत थोड़े ना है...

नहीं, पर अभी भी दुनिया के कितने हिस्सों में लड़कियों को यह नहीं मिलता...

हाँ, सही है...पर दुनिया के कितने हिस्सों में लड़कों को भी यह नहीं मिलता... दुनिया परफेक्ट नहीं है। जिन लड़कियों को यह सुविधा, ये अवसर नहीं मिलते... उनतक तुम्हारा फेमिनिज्म भी नहीं पहुँचता...और इन अवसरों को उनके पास लेकर तुम्हारा फेमिनिज्म नहीं जाएगा...उसका परिवार लेकर जाएगा...

जिसमें एक माता और एक पिता होंगे...एक पुरुष और एक स्त्री होंगे..

तो क्या हम कुछ ना करें? हाथ पे हाथ धर कर बैठें? दुनिया में जो कुछ भी गलत हो रहा है उसको बदलने की कोशिश ना करें...

तो यह है वह धारा जहाँ से युवा और आदर्शवादी मस्तिष्कों में वामपंथ की फसल की सिंचाई होती है...दुनिया में कुछ गलत हो रहा है, जिसे हम बदल रहे हैं...

मैंने उससे पूछा – क्या यह सही नहीं है कि रूसी क्रांति से पहले रूस में मजदूरों की स्थिति खराब थी? या चीन में किसानों की स्थिति खराब नहीं थी? बेशक थी। पर क्या चीन और रूस में क्रांति ने मजदूरों या किसानों की स्थिति को सुधार दिया या और बिगाड़ दिया?

चीन या रूस की क्रांति को किसानों या मजदूरों की स्थिति सुधारने से कोई मतलब नहीं था। वे उनके लिए सत्ता पर कब्जा करने के बहाने भर थे। वैसे ही तुम्हारा फेमिनिज्म भी एक पॉलिटिकल टूल भर है...इसे औरतों को अधिकार दिलाने के लिए नहीं लाया गया है...समाज को बिल्कुल वर्टिकली, बीचोबीच दो भाग में बाँटने के लिए लाया गया है...समाज के दो मूल स्तंभों, स्त्री और पुरुष के बीच संघर्ष खड़ा करने के लिए किया गया है।

वामपंथ का मूलमंत्र है संघर्ष...आपके दाएँ और बाएँ हाथ में संघर्ष। वे तो एक इमारत के दो पिलर्स को आपस में लड़ा दें यह बोल कर कि देखो, वह पिलर बीच में खड़ा है और तुम्हें किनारे खड़ा कर रखा है...या तुम्हारे ऊपर ज्यादा बोझ लाद रखा है और खुद किनारे खड़ा मजे ले रहा है..

48: नए-नए शब्द नहीं, नए-नए हथियार !

वामियों-वामिनियों की डिक्शनरी में क्या नए-नए शब्द जुड़ रहे हैं, यह जानने के लिए मैं बच्चों की तरफ देखता हूँ। ऐसे ही एक शब्द से परिचय हुआ था, कल एक वामिनी महिला को प्रयोग करते भी सुन लिया। शब्द है - Mansplaining--
यानी अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को कोई बात कहे या समझाए तो यह हुआ Mansplaining- अब इसका बात के तत्व और तथ्य से कोई संबंध नहीं है, 'मैन' अगर कुछ भी 'एक्सप्लेन' करने का प्रयास करे तो यह हुआ 'मैन-स्प्लेनिंग' और यह, पता नहीं क्यों, बहुत ही आपत्तिजनक बात है। यानि अब स्त्री-पुरुष के बीच कोई संवाद नहीं हो सकता...

इस शब्द की आवश्यकता या उपयोगिता को ध्यान से समझिये। जरा सोचिए, जो वामपंथी काश्मीर में संवाद चाहते हैं, फिलिस्तीन में संवाद चाहते हैं, आतंकियों, नक्सलियों, हत्यारों तक से संवाद चाहते हैं, वे मानवता की आधारभूत इकाइयों, पुरुष और स्त्री के बीच संवादहीनता क्यों खड़ी करना चाहते हैं?

इसके लिए वामपंथ की आधारभूत तकनीक को समझिये। जहाँ संवाद कोई समाधान नहीं देगा, जहाँ शक्ति प्रयोग से ही समाधान निकलेगा, वहाँ-वहाँ इन्हें संवाद चाहिए। और जहाँ समस्या खड़ी करने की इनकी तकनीक ही इस बात पर आधारित है कि जनसंख्या के किन्ही भी दो अवयवों में किसी तरह संघर्ष और वैमनस्य उत्पन्न किया जाए, वहाँ किसी भी तरह का संवाद कितनी बड़ी अड़चन है, सोचो तो...अगर स्त्री-पुरुष के बीच संवाद स्वस्थ हो तो दोनों वर्गों में कोई भेद-विभेद और संघर्ष की गुंजाइश ही क्यों होगी भला।

मानव स्पीशीज की दो इकाइयाँ जो स्वभावत: और प्राकृतिक रूप से प्रेम और साहचर्य के लिए डिजाइन की गई हैं, उनमें भी संघर्ष और विभेद खड़ा कर सकने के लिए यह संवादहीनता कितनी आवश्यक है। इसीलिए यही वह अवसर है जहाँ ये वामी कोई संवाद नहीं चाहते।

इन्हें संवाद से समस्या है, इन्हें परिवार से समस्या है, इन्हें राष्ट्र की अवधारणा से समस्या है, इन्हें धर्म और अध्यात्म से समस्या है, इन्हें संस्कार से समस्या है, इन्हें अनुशासन और अनुशासित समाज से समस्या है...इन्हें हर समाधान से समस्या है।

तो वामपंथी की यह अगली परिभाषा समझ लें.... जिन्हें हमेशा हर समाधान से समस्या हो, वे वामपंथी हैं!

49 : आई हेट पॉलिटिक्स!

आई हेट पॉलिटिक्स...

यह लड़कियों का फेवरेट वाक्य है, या शायद 'आई एम ऑन डायट' के बाद दूसरे नंबर पे...

पर उन्हें अक्सर पता नहीं होता कि वे कब पॉलिटिक्स पर बात करने लग गईं। या कहें कि उनकी पॉलिटिकल समझ सामान्यत: इतनी कम होती है कि उन्हें यह भी समझ नहीं आता कि क्या पॉलिटिक्स है और क्या नहीं है...

उनकी गाड़ी का चक्का खिसक कर डोनाल्ड ट्रम्प की पटरी पर आ जाता है...तो एक दिन ऐसी ही एक आईहेट पॉलिटिक्स-बाला को मैंने याद दिलाया कि डोनाल्ड ट्रम्प अब एक पेज थ्री पर्सनालिटी नहीं है, बल्कि एक राजनेता है...और डोनाल्ड ट्रम्प पर उसका ऑपिनियन एक पॉलिटिकल ऑपिनियन है और यह भी कि वह एक देश का राष्ट्रपति है, जिसके आप नागरिक नहीं है, इसलिए आपका यह पॉलिटिकल ओपिनियन एक वेस्टेड ऑपिनियन है...क्योंकि आपके ऑपिनियन के बावजूद उस देश ने, और अवश्य उस देश की महिलाओं की एक पर्याप्त संख्या ने भी उसे वोट किया है...तो आपके डोनाल्ड ट्रम्प के बारे में विचार सिर्फ एक 'ओपिनियन' हैं, 'स्टेटमेंट ऑफ फैक्ट' नहीं हैं...

कभी-कभी किसी को और ज्यादा खुजली-पत्ता छुआना हो तो यह एक वाक्य भी जोड़ देता हूँ...पता नहीं, अभी तक तो मुझे डोनाल्ड ट्रम्प के किसी काम में ऐसा कुछ पता नहीं चला जिससे उसके स्त्री-विरोधी होने का पता चले...

एक दिन तो सीमा-रेखा क्रॉस कर ली मैंने... कहा, पता नहीं लोग कैसे कहते हैं कि स्त्रियाँ ट्रम्प से घृणा करती हैं...उसने तीन-तीन स्त्रियों से शादियाँ की हैं, और आजतक उसकी किसी बीबी ने उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं कहा...ज्यादातर लोग तो एक बीबी, और उसका पॉजिटिव ऑपिनियन मैनेज नहीं कर पाते....और उसकी सभी बीबियाँ इतनी सुंदर हैं...लगता है सुंदर औरतें ट्रम्प से घृणा नहीं

करतीं, सिर्फ बदसूरत औरतें करती हैं...

कहने की जरूरत नहीं है, उस लड़की से कट्टी हो रखी है...आजकल बातचीत बंद है...

वामपंथ लड़कियों के इमोशन को ऑपिनियन मेकिंग का बहुत बड़ा टूल मानता है। अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में इस टूल का खूब प्रयोग किया गया। यूनिवर्सिटी कैंपस में एक स्लोगन चला था – Support Trump : Get Dumped---यानि आपने अगर ट्रम्प को सपोर्ट किया तो आपकी गर्ल फ्रेंड आपको डम्प कर देगी... लड़कों पर यह दबाव था कि अगर ट्रम्प को समर्थन किया तो कभी लड़की नहीं मिलेगी...अब सोच लो, देश प्यारा है या सेक्स...

अगर आप किसी वामपंथी या लिबरल बाला से असहमत होते हैं तो यह सिर्फ एक भिन्न पॉलिटिकल ऑपिनियन ही नहीं है...यह गलत ऑपिनियन है और बिना किसी तर्क या विवाद के सीधा गलत है...और आप सिर्फ एक गलत ऑपिनियन ही नहीं रखते...आप एक बुरे व्यक्ति हैं...आपके ऑपिनियन बताते हैं कि आप एक दुष्ट, बुरे संस्कारों वाले, हीन और निकृष्ट व्यक्ति हैं।

मेरी कॉलेज के दिनों की एक मित्र, जिससे मेरी कभी कभी ठीक ठाक बातचीत हो जाया करती थी और जिसके लिए मेरे मन में काफी सम्मान है, ने एक दिन अपनी असहमति कुछ इन शब्दों में व्यक्त की – Rajeev, I am ashamed I have shared a classroom with you- एक दूसरी क्लासमेट जिनसे यूँ भी दुआ सलाम कम ही थी, उसकी नाराजगी इतनी बढ़ी कि अब हैप्पी बर्थडे बोलने पर जवाब भी नहीं देती...

'राजीव, यू आर सो स्वीट' से लेकर 'राजीव, यू आर टेरीबल' का यह सफर अभी तक मैंने 7 मिनट के रिकॉर्ड समय में तय किया है...एक ड्रिंक आर्डर करने से लेकर पोटैटो फ्राइज की एक प्लेट सर्व होने के बीच मैंने यह उपलब्धि हासिल कर ली है...

मेरे जेएनयू के कुछ मित्र बताते हैं, जेएनयू में पहुँचने वाले ज्यादा बिहारी गाँव के

लड़कों के वामपंथी बनने के पीछे यह कहानी होती है। वहाँ पहुँचने के पहले उन्होंने किसी लड़की से कोई बात नहीं की होती है। अब वहाँ मौजूद दिल्ली की मॉड, स्मार्ट, फ्रैंक लड़कियों से बात करने, साथ उठने बैठने को मिलता है तो ये लड़के बिल्कुल बह जाते हैं। अब वे ऐसी कोई बात बोलना तो दूर, सोचने की भी नहीं सोच सकते जो उन्हें नाराज कर दे। लड़कियाँ खुद कहेंगी कि वे पॉलिटिक्स से घृणा करती हैं पर वे आपसे भी प्यार नहीं करेंगी अगर आप उनके पॉलिटिकल ऑपिनियन से सहमत नहीं होते और यह रिलक्टेंट ऑपिनियन हमेशा वामपंथी होता है...

50: समलैंगिकता का विज्ञापन

समलैंगिकता पर कोर्ट के निर्णय के साथ ही लोगबाग जाग गए। हमने प्रतिक्रियाएँ देनी शुरू कर दीं, क्योंकि हम किस बात पर प्रतिक्रिया देंगे यह हमेशा दूसरे खेमे से तय किया जाता है।

एक सामान्य प्रतिक्रिया है कि लोगों को पप्पू याद आएगा ही आएगा। कुछ हँसी मजाक होगा। समलैंगिकता की उससे ज्यादा प्रासंगिकता हमारे समाज में कभी नहीं थी। अगर कोई समलैंगिक निकल आता है तो हमारे देश में यह थोड़े मजाक और थोड़े कटाक्ष से ज्यादा बड़ा विषय कभी नहीं बनता। आपने किसी को जेल जाते तो नहीं सुना होगा।

पर पश्चिम की बात कुछ और है। यहाँ यह सचमुच दंडनीय अपराध था। ऑस्कर वाइल्ड ने कई साल जेल में गुजारे थे। पर वह तो था ही मोटी चमड़ी वाला। उससे ज्यादा दुखद कहानी है कंप्यूटर के आविष्कारक गणितज्ञ एलन ट्यूरिंग की। ट्यूरिंग बेचारा शर्मीला-सा आदमी था। उसे बेइज्जती झेलने की आदत नहीं थी। उसे सजा के तौर पर कुछ साल हॉर्मोन थेरेपी दी गई, फिर उसने आत्महत्या कर ली।

इन दुखद कहानियों का बहुत बड़ा बाजार है। भारतीयों का कोमल हृदय ऐसी ट्रैजिक कहानियों के लिए बहुत ही उर्वर मिट्टी है। तो आज मुझे भी एक-दो सहानुभूति से भरी हुई पोस्ट्स मिलीं, जिनमें समलैंगिकों की व्यक्तिगत पसंद और जीवन शैली के प्रति सम्मान और स्वीकार्यता के स्वर थे।

पर यहाँ किसी के लिए भी समलैंगिक व्यक्तियों के सेक्सुअल ओरिएंटेशन की पसंद और निजता का विषय विमर्श का केंद्र नहीं है। भारत में यूँ ही सेक्स एक ऐसा टैबू है कि कोई सामान्यत: सेक्स की बात नहीं करता। सेक्स टीनएजर्स के बीच एक कौतूहल और जोक्स के अलावा किसी गंभीर चर्चा में कोई स्थान नहीं पाता। इसलिए अगर आप अपने व्यक्तिगत जीवन में समलैंगिक हों तो कोई यूँ भी

आपकी निजता में झाँकने नहीं आने वाला।

पर यह वामपंथियों के लिए एक बड़ा विषय है। क्यों? क्योंकि इसमें वामपंथी उद्देश्यों की पूर्ति का बहुत स्कोप है। पहली तो कि इसमें आइडेंटिटी पॉलिटिक्स जुड़ी है। आप आज इसे महत्वपूर्ण नहीं समझते, पर 15-20 सालों में यह एक बड़ा विषय हो जाएगा। जितने समलैंगिक होंगे, उनके लिए यह उनकी पहचान का सबसे बड़ा भाग होगा। उन्हें हर समय हर किसी को यह बताना बहुत जरूरी लगेगा कि वे गे/लेस्बियन हैं।

फिर अगला पक्ष आएगा अधिकारों का - गे/लेस्बियन के अधिकार परिभाषित किये जायँगे, और जब वे परिभाषित कर दिए जाएँगे तो जाहिर है कि उनका हनन हो रहा होगा, जो कि वामपंथी संदर्भ में हर समाज में होता है। वामपंथी शब्दकोश में समाज की परिभाषा ही यह है, कि वह इकाई जहाँ आपके अधिकार छीने जाते हैं उसे समाज कहते हैं।

फिर एट्रोसिटी लिटरेचर की बाढ़ आएगी। आपको जरा जरा-सी बात पर होमोफोबिक करार दिया जाएगा। कोई यह थ्योरी लेकर आएगा कि हिन्दू सभ्यता में सदियों से समलैंगिकों का शोषण होता आ रहा है। राम ने बाली और रावण को इसलिए मार दिया था क्योंकि दोनों गे थे, और इसी वजह से कृष्ण ने शिशुपाल को मार दिया था।

यहाँ तक आप इसे नुइसन्स समझ कर झेल लोगे। लेकिन तब यह समस्या बन के आपके बच्चों की तरफ बढ़ेगा। क्योंकि उन्हें रिक्रूट चाहिए। समाज के 2-3% समलैंगिक सामाजिक संघर्ष के लिए अच्छा मटेरियल नहीं हैं। बढ़िया संघर्ष के लिए इन्हें 10-15% होना चाहिए। तो ये स्कूलों में समलैंगिकता को प्रचारित करेंगे, उसे प्राकृतिक और फिर श्रेष्ठ बताएँगे। समलैंगिक खिलाड़ियों और फिल्म स्टार्स की कहानियाँ बच्चों तक पहुँचने लगेंगी। इसे ग्लैमराइज किया जाएगा।

मुझे कैसे पता? क्योंकि यह सब हो चुका है। यह सारा ड्रामा 1950-60 के दशक में अमेरिका में और 70-80 के दशक में इंग्लैंड और यूरोप में खेला जा

चुका है। समाज में परिवार नाम की संस्था इनके निशाने पर है, इसलिए ये एक समलैंगिक परिवार की कहानी चलाने में लगे हुए हैं। समलैंगिक शादियाँ, उनके गोद लिए हुए बच्चे...परिवार के समानांतर एक संस्था खड़ी की जा रही है। साथ ही यह वर्ग नशे के लिए भी बहुत अच्छा बाजार है, डिप्रेशन का भी शिकार औसत से ज्यादा है और इस वजह से सोशल सिक्योरिटी सिस्टम यानी मुफ्तखोरी की व्यवस्था का भी अच्छा ग्राहक है।

जो चीज सबसे ज्यादा चुभेगी आपको, वह है उनका समलैंगिकता का विज्ञापन। जैसे कि धूप में आप काले हो रहे हैं...बोल कर आपको फेयरनेस क्रीम बेच दी जाती है। युवाओं और किशोरों को बताया जाएगा कि उनके जीवन में जो कुछ खालीपन है, जो कूलत्व घट रहा है उसकी भरपाई सिर्फ समलैंगिकता से हो सकती है। बहुत से टीनएजर्स सिर्फ पीअर प्रेशर में, कूल बनने के लिए समलैंगिकता के प्रयोग करते हैं। इसे यहाँ कहते हैं 'एक्सप्लोरिंग योर सेक्सुअलिटी'।

हर शहर में हर साल गे-प्राइड परेड के आयोजन होंगे, जिनमें लड़के पिंक रिबन बाँध कर और लिपस्टिक लगा कर और लड़कियाँ सर मुँड़ा कर LGBT की फ्लैग लेकर दारू पीते और सड़कों पर चूमते मिलेंगे। यह विज्ञापन और रिक्रूटमेंट इस परिवर्तन का सबसे घिनौना पक्ष है। आज जो बात इससे शुरू हुई है कि अपने बेडरूम में कोई क्या करता है यह उसका निजी मामला है, तो मामला वह निजी रह क्यों नहीं जाता, उसे पूरे शहर को प्रदर्शित करने और पब्लिक का मामला बनाने की क्या मजबूरी हो जाती है? कैसे एक व्यक्ति का सेक्सुअल ओरिएंटेशन उसकी पूरी आइडेंटिटी बन जाता है?

इसकी हद सुनेंगे? मेरे बच्चों के स्कूल में एक महिला को बुलाया गया एनुअल डे में चीफ गेस्ट के रूप में। उनकी तारीफ यह थी कि वे LGBT के लिए एक चेरिटी चलाती थीं। यह चेरिटी बच्चों को समलैंगिकता को प्राकृतिक रूप से स्वीकार्य बनाने का काम करता है। उन महिला ने बच्चों को समलैंगिकता की महिमा बताई। फिर अपनी चेरिटी आर्गेनाईजेशन के बारे में बताया, बीच में दबी

जुबान में डोनाल्ड ट्रम्प को गालियाँ भी दीं। उसने अपनी लिखी और छपवाई हुई नर्सरी बच्चों की एक तस्वीरों वाली कहानियों की किताब भी दिखाई। उसमें बतख, बंदर, हिरण की कहानियाँ थीं...खास बात यह थी कि उन कहानियों में सभी पात्र समलैंगिक थे...

सोच सकते हैं आप? स्कूल समलैंगिकता का प्रचार कुछ ऐसे कर रहे हैं कि 2-3 साल के बच्चों को भी समलैंगिकता के बारे में बताया जा रहा है...

समलैंगिकता पर यह आंदोलन सिर्फ उन कुछ लोगों की निजता और यौन-प्राथमिकताओं के अधिकार का प्रश्न भर नहीं है जो नैसर्गिक रूप से समलैंगिक हैं (अगर समलैंगिकता को आप यौन-विकृति ना भी मानें)। समझें यह वामपंथ का एक और रिक्रूटमेंट काउंटर खुला है।

51 : अनैतिक की स्वीकार्यता

आज ब्राइटन गया था। यह एक छोटा-सा शहर है यहाँ के दक्षिणी समुद्र तट पर। टूरिस्टी, मौज मस्ती की जगह।

आज वहाँ बीच पर कुछ ज्यादा ही भीड़ थी। ढेर सारे झंडे, अजीब तरह के मास्क लगाए और मेक अप किये लोग, सर पर रंगीन झालर बाँधे, नशे में झूमते लोग। मैंने समझने की कोशिश की, यह किस तरह का आयोजन था?

हर तरफ लगे झंडे को पहचाना। यह LGBT फ्लैग था। यह भीड़ गे-प्राइड वालों की भीड़ थी। हाँ, ठीक सुना आपने, गे- प्राइड। यानि अप्राकृतिक मैथुन का यह नवाबी शौक एक प्राइड यानि गर्व की बात है।

वह एक समय था जब समलैंगिकता एक अपराध माना जाता था। लगभग 120 साल पहले ऑस्कर वाइल्ड को और 70 साल पहले गणितज्ञ और कंप्यूटर पायनियर एलन टूरिंग को समलैंगिकता के आरोपों में अपराधी घोषित किया गया था। वाइल्ड को जेल जाना पड़ा था और टूरिंग को हॉर्मोन थेरेपी लेकर मेडिकल कैस्ट्रेशन करवाना पड़ा था।

तब से आज तक बात बिल्कुल बदल चुकी है। समलैंगिक संबंध ना सिर्फ कानूनी रूप से मान्य हैं, अनेक देशों में समलैंगिक शादियाँ हो रही हैं।

फिर भी समलैंगिकता के अधिकारों को लेकर एक किस्म का हो-हल्ला है। आरंभिक तर्क था कि दो वयस्क व्यक्ति अपने बेडरूम में क्या करते हैं यह किसी तीसरे व्यक्ति का मामला नहीं है। यह तर्क मान लिया गया...आप समलैंगिक हैं या उभयलिंगी हैं या क्या हैं यह आपका निजी मामला है...हमें इस बारे में कुछ नहीं जानना है...

तो ठीक है यार...खुश रहो। पर अब आज सबको क्यों बता रहे हो कि तुम्हें अपने बेडरूम में क्या करना पसंद है? अपने तक रखो ना...

नहीं। बात उनके अधिकारों की नहीं है। बात उनकी भीड़ जुटाने की है, उनके

राजनीतिक पोलराइजेशन की है। उनकी आड़ में सामाजिक संरचना पर वार करने की है। सामाजिक माहौल को बदल कर कुछ ऐसा माहौल बनाने की है कि समलैंगिक यौन संबंध ही समाज की मुख्यधारा बन जाये। एक तरह से समलैंगिकता का प्रचार किया जा रहा है। आने वाली पीढ़ी में नए रिक्रूट खोजे जा रहे हैं. क्योंकि वे लिबरल फौज के सिपाही हैं। उनके कंधे पर रख कर किसी को अपनी बंदूक चलानी है, अपना निशाना साधना है, किसी को सत्ता तक पहुँचना है। उसकी कीमत आपके बच्चे चुकायेंगे, आपका वंश दूषित होगा...पर उनके लिए यह छोटी-सी बात है।

मेरी पत्नी ने बताया कि उसकी एक बुल्गारियन सहकर्मी भारत में समलैंगिकता को कानूनी बनाये जाने को लेकर ताने दे रही थी – अभी तो यह शुरुआत है... आगे-आगे देखो क्या-क्या होगा...इतनी गंदगी फैलायेंगे कि बर्दाश्त से बाहर हो जाएगा।

वह एक टीवी प्रोग्राम के बारे में बता रही थी, जिसमें सेक्स संबंधी मुद्दों पर चर्चा करते हैं। उसमें सुझाव दिया जा रहा था कि स्कूलों में टीचर 11 वर्ष की लड़कियों को मस्टरबेशन करना सिखाये...जिससे कि उन्हें सेक्सुअलिटी के बारे में जल्दी जिज्ञासा पैदा हो और वे बड़े होने से पहले अपनी सेक्सुअलिटी को एक्स्प्लोर कर सकें। उनसे भी छोटे प्राइमरी स्कूलों के बच्चों को होमोसेक्सयूएलिटी और सारे प्रकार के डेवीएंट सेक्सुअल ओरिएंटेशन के बारे में बताया जाए जिससे कि उन्हें अपनी सेक्सुअलिटी को एक्स्प्लोर करने का समय मिले और अगर उनमें समलैंगिक प्रवृत्तियाँ हो तो उसे विकसित होने का अवसर मिले...

इंग्लैंड और यूरोप में ये प्रयोग इस सीमा तक पहुँच चुके हैं। कई लोग पीडोफिलिया को स्वीकार्य बनाये जाने के पक्ष में हैं...यहाँ बहुत से बच्चे बिना माँ-बाप के स्टेट प्रोटेक्शन में पल रहे हैं। उनका तो गिनी-पिग बना डालेंगे... पश्चिम ने इतनी तरक्की कर ली है कि क्या कहने ...अब तो तरक्की की राह पर चल पड़े हैं हम भी...कहाँ तक पहुँचेंगे, देखते रहिए..

52 : समलैंगिकता : सामाजिक स्वीकृति की जिद

पादना तो एक बिल्कुल ही प्राकृतिक क्रिया है। पेट में गैस बनती है, वह निकलने का रास्ता खोजती है। उसको निकल जाने देना चाहिए। अंदर बन्द रहेगी तो वह तकलीफ देगी। बल्कि अगर गैस ना छूटे तो यह इंटेस्टाइनल ऑब्स्ट्रक्शन का लक्षण होता है। सर्जन पेट की सर्जरी के बाद बेचैनी से मरीज के हवा छोड़ने की प्रतीक्षा करते है। वरना सर्जन की हवा सटक जाती है।

गैस्ट्रोएंटरोलॉजी में काम कर रहा हूँ, बहुत लोग आते हैं इसकी शिकायत लेकर कि गैस बहुत निकलती है। 99% को कोई बीमारी नहीं निकलती, चाहे उनकी गैस्ट्रोस्कोपी करो या कोलोनोस्कोपी। ऐसा नहीं है कि ज्यादा गैस छोड़ने वाला आदमी जल्दी मर जाता है। खूब खोजोगे तो कोई ना कोई जीन ऐसा निकल आएगा ही जो यह बता देगा कि कौन आदमी ज्यादा छोड़ेगा और किसकी ज्यादा महकेगी।

पर आप जहाँ चाहे वहाँ जब चाहे तब टाँग उठा के पाद नहीं सकते। इसके लिए जेल तो नहीं होगी, लेकिन कोई साथ बैठने भी नहीं देगा। प्राकृतिक प्रक्रिया होना और सामाजिक स्वीकृति एक ही बात नहीं है। पाखाना भी एक बिल्कुल प्राकृतिक चीज है। वह खेत में फेंका जाता है तो बढ़िया खाद बनता है। पर आप उसे प्लेट में परोस नहीं सकते।

समलैंगिकता के विज्ञान पर बहस बेकार बात है। यह उसे बीमारी घोषित करने और प्राकृतिक-अप्राकृतिक होने का प्रश्न ही नहीं है। यह उसकी सामाजिक स्वीकृति का प्रश्न है। यह प्रश्न समाज तय करेगा, समाज की मुख्य धारा तय करेगी। वरना कल को यह समाज की मुख्य धारा को बदल देगा।

और अगर एक बार यह दरवाजे में टाँग अड़ा कर घुस गया तो फिर आप इसे अस्वीकृत नहीं कर पाएँगे। यह वह यात्री है जो ट्रेन में चढ़ेगा, आपकी सीट के

नीचे अपना झोला रखेगा, फिर आप जरा-सा पैर समेटेंगे तो किनारे में बैठ जाएगा। फिर आपको धकिया के पैर पसार कर लेटने की माँग करेगा।

क्योंकि आप इसके साथ यात्रा कर रहे दूसरे उपद्रवी यात्रियों को नहीं पहचान रहे जो इसी ट्रेन में पहले से घुस के गंदगी फैला रहे हैं, मूँगफली के छिलके गिरा रहे हैं, गुटखा थूक रहे हैं, बल्ब और पँखा चोरी कर के ले जा रहे हैं, हर गाँव के बाहर चेन खींच के ट्रेन रोक रहे हैं और बेटिकट बांग्लादेशियों और रोहिंग्या को चढ़ा रहे हैं। वे ही इस मासूम दिखने वाली बेचारी-सी सवारी को आपकी सीट पर बिठाने की वकालत कर रहे हैं...

समलैंगिकता के विज्ञान की बहस के फेर में बिल्कुल मत फँसिये। यह बहस ही बोगस और अवैज्ञानिक है। यह सामाजिक स्वीकार्यता का विषय है। इसे सामाजिक विषय रहने दीजिए। ये जितने भी फर्जी वैज्ञानिक तर्क दिए जा रहे हैं ये उसका जाली टिकट है जिसे दिखा कर वह आपकी सीट पर जगह माँग रहा है। उसे साफ साफ कह दीजिये, भाई तुम्हारा टिकट इस ट्रेन का नहीं है...यह ट्रेन पिछवाड़ेपुर नहीं जाएगी।

53 : पॉलिटिकल करेक्टनेस का साम्राज्य

एनएचएस यानि नेशनल हेल्थ सर्विस दुनिया की बेहतरीन मुफ्त चलने वाली सामाजिक मेडिकल व्यवस्था है। मुफ्त तो क्या है, 12% नेशनल इन्शुरेन्स पे करने वाले जानते हैं, लेकिन गरीबों, लाचारों और बचे खुचे मुफ्तखोरों के लिए तो मुफ्त ही है।

पर असंतुष्टों के असंतोष के लिए यहाँ से भरपूर खाद पानी मिलता है। व्यवस्था में खामी निकलना, शिकायत करते रहना, कोसना, भड़ास निकालना यह यहाँ की बिगड़ैल जनता के शगल हैं।

पिछले दिनों ऐसे ही एक जागरूक नागरिक से मुलाकात हुई। जनाब काफी बीमार हैं, खाना नहीं निगल सकते। उन्हें एक छोटे-से आपरेशन की जरूरत है। पर पिछले आठ महीने से उनका आपरेशन नहीं हो पाया है। जिस सर्जन से मिलते हैं, उन्हें उसकी कोई ना कोई बात पसंद नहीं आती और अगले दिन उसकी कंप्लेन लिख मारते हैं। फिर कहते हैं कि उन्हें उस डॉक्टर पर भरोसा नहीं रहा...क्योंकि उन्होंने शिकायत की है इसलिए डर है कि वह डॉक्टर अब उनका इलाज ठीक से नहीं करेगा। इस तरह से उन्होंने पूरे एक हस्पताल को अपने विश्वास के दायरे से बाहर कर लिया है। अब दूसरे ट्रस्ट में दूसरे हस्पताल में रेफर किया गया वहाँ भी उनकी शिकायती पारी जारी है।

तो कुल आठ महीने में उनका आपरेशन नहीं हो पाया है। नाक से नली डाल कर खुराक दी जा रही है, आपरेशन के लिए एक काबिल डॉक्टर की खोज जारी है।

पहले दिन जब उनसे मेरी मुलाकात मॉर्निंग राउंड में हुई तो मैं इस रेपुटेशन से वाकिफ था। उन्होंने अपनी पूरी कहानी फिर से सुनाई...कैसे एनएचएस पब्लिक के पैसे पर चलता है पर पब्लिक की परवाह नहीं करता, कैसे यहाँ शिकायत करने पर सुनवाई नहीं होती, कैसे डॉक्टर अपने आपको खुदा समझते हैं, कैसे वकीलों ने डॉक्टरों की असलियत दुनिया को बता दी है...और मैं सारे समय सर

हिला-हिला कर हूँ-हाँ करता रहा और अपनी खैर मनाता रहा।

पर उस सारे समय मुझे एक ही बन्दा याद आता रहा - इंग्लैंड की लेबर पार्टी का लीडर जेरेमी कॉर्बीन। शक्ल सूरत और कद काठी से ही नहीं, बात और बात करने के झगड़ालू अंदाज से भी..और nuisance value में भी और यह पोस्ट मूलत: जेरेमी कॉर्बीन के बारे में है...

जेरेमी कॉर्बीन यहाँ की राजनीति का कॉमरेड है। लेबर पार्टी के सबसे बाएँ छोर का वामपंथी। जिंदगी भर उसने पंगे ही लिए हैं। आज से कुछ साल पहले वह ब्रिटिश राजनीति का तमाशा था, उसे कोई सीरियसली नहीं लेता था। आज वह मुख्य विपक्षी दल का नेता है और एक दिन उसके प्रधानमंत्री बनने का सीरियस खतरा मौजूद है।

मैंने राउंड के बाद अपने जूनियर को कहा कि मुझे यह बन्दा जेरेमी कॉर्बीन जैसा लगा। पर वह जूनियर जेरेमी कॉर्बीन का प्रशंसक निकला। कहने लगा...कुछ भी कहो, कॉर्बीन है सिद्धांत वाला आदमी। लोगों ने उसका विरोध किया, मजाक उड़ाया, पर उसने अपना स्टैंड नहीं बदला। वह मिलिट्री, मिलिट्री ऑपरेशन्स, नुक्लेअर हथियारों का विरोधी है, शांति का समर्थक है...और जानते हो, वह क्वीन से हाथ नहीं मिलाता। क्योंकि वह सिद्धांत रूप में राजतंत्र का विरोधी है। हालाँकि वह कहता है कि क्वीन के पास कोई सचमुच की शक्तियाँ नहीं हैं इसलिए वह उन्हें माइंड नहीं करता...ब्रिटिश राजशाही को बदलना उसके एजेंडा में सबसे ऊपर नहीं है...पर वह सिद्धांत रूप में क्वीन को स्वीकार नहीं करता।

जरा सोचें, यह है आज वामपंथ की ताकत। क्वीन अगर क्वीन है तो वह इन वामपंथियों के रहम-ओ-करम पर क्वीन है। ये उसे बर्दाश्त करते हैं, बदलने और हटाने की प्राथमिकता नहीं दिखाते इसलिए क्वीन गद्दी पर है...क्योंकि क्वीन के पास कोई सचमुच की शक्तियाँ नहीं है, वह अपनी ताकत नहीं दिखाती इसलिए वे उसे बर्दाश्त करते हैं...ये है वामपंथियों की धमक। चाहे ये चुनाव नहीं जीतते, चाहे पब्लिक इन्हें नहीं चुनती, पर क्वीन को ये अपने ठेंगे पर रखते हैं।

इनके पॉलीटिकल करेक्टनेस को कोई छू नहीं सकता...

और इसका प्रमाण देखना है? ब्रिटेन के शहजादे की शादी हुई थी दो तीन महीने पहले। प्रिंस हैरी की पत्नी मेगन मर्केल एक टेलीविजन स्टार है, सुंदर है...पर उसकी एक और तारीफ है...वह मिक्स्ड रेस है। उसकी माँ अश्वेत हैं और अगर आपने उसकी शादी का समारोह देखा हो तो शायद नोटिस किया हो...एक अश्वेत पादरी घंटे भर का भाषण दे रहा था। दास-प्रथा की कहानी कह रहा था.. पूरे समारोह में मेगन का अश्वेत बैकग्राउंड खूब बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया। ब्रिटिश राजपरिवार अपने आप को अश्वेतों के नजदीक और उनका हितैषी दिखाने की मजबूरी के तले दबा दिखाई दिया।

आपने सुना होगा कि पुराने जमाने में राजपरिवार में शादियाँ पॉलीटिकल अलायन्स के लिए होती थीं। यह शादी भी एक पॉलीटिकल अलायन्स ही समझें। ब्रिटिश राजपरिवार का वामपंथी साम्राज्य से अलायन्स...पॉलीटिकल करेक्टनेस से अलायन्स। आज के दिन वामपंथी पॉलीटिकल करेक्टनेस दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्य है...

और आपने उस शादी में भारत की प्रियंका चोपड़ा को देखा था ना। वह मेगन मर्केल की मित्र है। पर मूलतः वह वहाँ क्या कर रही थी? यह समझना है कि वामपंथी दुनिया में प्रियंका चोपड़ा की क्या उपयोगिता है तो उसके नए वेब सीरीज क्वांटिको के बारे में जानें जिसमें वह दुनिया को यह बताती नजर आयी है कि कैसे इस्लामिक आतंक मूलतः इस्लामिक आतंक नहीं है, बल्कि हिन्दू कट्टरपंथियों की इस्लाम को बदनाम करने की साजिश है। उसे भारत में देश का नागरिक नहीं, बल्कि इस वामपंथी साम्राज्य का राजदूत समझें।

54: तुम मेरी पीठ खुजाओ, मैं तेरी खुजाता हूँ...

मेरे एक पारसी मित्र हैं लंदन में। उम्र में मुझसे काफी बड़े हैं, रिटायर्ड डेंटिस्ट हैं। मुझ पर उनका बहुत स्नेह है और एक बात है, मेरा और उनका जन्मदिन एक ही तारीख को पड़ता है। तो बहुत बार हम एक साथ ही जन्मदिन मनाते हैं।

उनके 60वें जन्मदिन को उनके निकट मित्रों ने विशेष धूमधाम से मनाया। तो उसमें उन्होंने मुझे भी आमंत्रित किया था। यहाँ के बेहद पॉश इलाके, रिचमंड में थेम्स किनारे उनके एक मित्र के घर पर। वहाँ पहुँच कर समझ में आया, उनकी मित्र मंडली लिबरल्स का जमावड़ा थी। उसमें हमें मिला कर कुल चार भारतीय थे। उसके अलावा अलग-अलग यूरोपीय मूल के कुछ लोग थे। मेजबान के घर पर आलमारी में वामपंथी साहित्य का संकलन सजा था। पूरे विमर्श की भाषा वामपंथी थी। उसमें एक भारतीय महिला गाईनेकोलोगिस्ट भी थी जिन्हें हिन्दू धर्म को लज्जित करने में विशेष आनंद आ रहा था। जब उनसे मैंने जिरह शुरू की तो उन्होंने माना कि उन्हें विशेष जानकारी नहीं है पर ऐसे उनके व्यक्तिगत विचार हैं। मैंने उन्हें लताड़ा भी कि मैडम, जब किसी बात के बारे में कुछ भी मालूम ना हो तो दस्तूर है कि चुप रहा जाए ना कि मूर्खता और अज्ञान का खुला प्रदर्शन किया जाए।

मैडम चुप तो हुई, पर उन्होंने आँसू-वाँसू बहाकर विक्टिम कार्ड खेला और लोगों की सहानुभूति लेने का भी भरपूर प्रयास किया। खैर, मुझे इतना समझ में आ गया कि मेरे मित्र की मंडली वामियों की है। पता लगा कि हर्ष मंदार और प्रशांत भूषण जैसों के साथ उनकी पत्नी के निकट संबंध हैं।

पर मेरे मित्र या उनकी पत्नी की अपनी कोई स्पष्ट राजनीतिक सोच नहीं है। बस उस मंडली में उठना बैठना भर है। तो मेरा उनसे संपर्क बना रहा और उस घटना के बावजूद मेरे और उनके संबंधों में कोई कटुता नहीं आई।

पिछले दिनों उनका फोन आया कि उनकी अंग्रेजी कविताओं का एक संकलन

प्रकाशित हुआ है। वे उसकी एक कॉपी मुझे गिफ्ट करने मेरे घर भी आये। साथ ही यह भी बताया कि किसी एक सांस्कृतिक संगठन ने उन्हें फिलॉसॉफी और हयूमैनिटिज में प्रोफेसर की मानद उपाधि भी दी है।

मैंने उन्हें बधाई दी। उनकी कविताएँ भी पढ़ीं। कविताएँ अच्छी हैं, सरल हैं। ज्यादातर युवावस्था मे ही लिखी गई हैं। उन पर स्कूलबॉय सेंटिमेंटलिज्म की छाप है। पर ना तो उन कविताओं में, ना ही मेरे प्रिय मित्र के विचारों में फिलॉसफी और हयूमैनिटिज के बारे में कोई ऐसा गहन चिंतन है कि उन्हें मानद प्रोफेसर मान लिया जाए।

इसके मूल में है उनकी लिबरल मित्र मंडली, जो उन्हें प्रमोट कर रही है, उन्हें एक बुद्धिजीवी के रूप में स्थापित कर रही है। हालाँकि मेरे मित्र की अपनी कोई स्पष्ट राजनीतिक सोच नहीं है। पर यह भी उनके लिए काम की बात है, क्योंकि तब उनसे आप किसी भी राजनीतिक विषय पर कुछ भी बुलवा लो...वे बिना सोचे समझे बोल देंगे।

वामपंथी इस मामले में हमसे बहुत बेहतर हैं। वे आपस में एक दूसरे को प्रोमोट करते हैं। कैलाश सत्यार्थी जैसे व्यक्ति को जिसने पता नहीं क्या काम किया है, नोबेल प्राइज तक दिलवा दिया। सामान्य से फेसबुक पर ही आप किसी वामपंथी की वॉल पर चले जाएँ, आपको कभी दो वामपंथी खुल कर लड़ते नहीं मिलेंगे जैसा राष्ट्रवादियों के बीच अक्सर होता है। एक तो कि उनमें से किसी की कोई सोच नहीं होती, सब एक जैसी तोता रटन्त करते हैं, भेड़ों जैसे एक सुर में मिमियाते हैं तो कोई विवाद या मतभेद यूँ भी नहीं होना। पर शीर्ष पर बैठे लोग, जिनमें मतभेद होता भी है तो आपस में खुल के नहीं लड़ते। हाँ, जब सत्ता हाथ में आ जाये और सत्ता का संघर्ष हो तो आपस में गला काट लेंगे, पर आप उनके बीच की कुकुरहाव नहीं सुनेंगे।

यह चीज तो सीखने लायक है वामियों से। उनका एक दूसरे को प्रमोट करना, सामरिक महत्व के स्थानों पर अपने लोगों को पाल-पोस कर बिठाना। इसे कहते हैं इको-सिस्टम का निर्माण।

संवाद और सम्प्रेषण की दुनिया पर वामपंथियों का कब्जा है और आप उनके बनाये दायरे से बाहर कुछ भी नहीं कह सकते हैं। इस सेंसरशिप का नाम है पॉलीटिकल करेक्टनेस।

यह पॉलीटिकल करेक्टनेस अपने आप को पूरी दुनिया में कुछ इस तरह स्थापित कर चुका है कि दुनिया के राजनेता, राष्ट्राध्यक्ष और राज परिवार इसकी चरण वंदना करते नजर आते हैं। तो अगर आप इससे पंगे लेने की, इसे चुनौती देने की सोचते हैं तो जरूर दीजिये, पर सोच समझ कर...योजना बना कर और गणित लगा कर। क्योंकि यह सिर्फ आपकी फेसबुक आईडी ही नहीं बन्द कर सकता... आपका रोजगार छीन सकता है, आपको कानूनी शिकंजे में भी उलझा सकता है।

वामपंथियों ने यह कैसे हासिल किया? एक राजनीतिक सोच कैसे समाज की स्थापित सोच बन जाती है जिसे छेड़ने की हिम्मत किसी में नहीं है? इस स्थापित सोच के लिए अंग्रेजी में एक शब्द है – हेजेमनी।

इस हेजेमनी को पहचानने का काम किया था एक इटालियन मार्क्सवादी राजनीतिज्ञ एंटोनियो ग्राम्स्की ने। उसने अपने लेखों में इसका जिक्र किया है कि कैसे किसी समाज में लोगों को स्थापित मूल्यों के विरुद्ध नहीं खड़ा किया जा सकता। इसलिए लोगों को अपने साथ लाना हो तो पहले समाज के स्थापित मूल्यों को बदलना होगा और उसका यह प्रभावशाली आकलन वामपंथियों के बहुत काम आया और उन्होंने उस दिशा में अपनी रणनीति बनानी शुरू की।

पर यह उपलब्धि सरल और सस्ती नहीं थी। ग्राम्स्की के जीवन को संक्षेप में जानें। ग्राम्स्की एक प्रभावशाली लेखक और पत्रकार था और इटालियन कम्युनिस्ट पार्टी का संस्थापक भी। पर उसे दूसरे वामपंथी तानाशाह मुसोलिनी ने 1926 में 20 साल के लिए जेल में डाल दिया। वह अगले 11 वर्षों तक जेल में ही रहा, जहाँ उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। उसे टीबी हो गया। 1937 में उसे इलाज के लिए जेल से छोड़ा गया जिसके कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

पर जेल में ही उसने चोरी छुपे कागज कलम का जुगाड़ करके अपनी नोटबुक में

हजारों लेख लिखे जो प्रिजन नोटबुक्स के नाम से जाने जाते हैं। उसके लेखों को जेल से बाहर स्मगल करके लाया गया और छापा और बाँटा गया।

आज उनकी हेजेमनी स्थापित है, जिसके विरुद्ध आप कुछ नहीं कह सकते। उनकी इस सफलता के पीछे उनका कमीनापन और उनका दुष्ट-तंत्र तो है ही, पर इस तंत्र को खड़ा करने में उनका जो अथक प्रयास और ग्राम्स्की जैसी लोगों की आहुति है उसे नकार नहीं सकते।

इस बाजी को वापस पलटना है तो उनसे ही सीखना होगा। जितना प्रयास और समर्पण उनका रहा है उतना हमें भी लगाना ही होगा। एक वामपंथी मुसोलिनी ने दूसरे वामपंथी ग्राम्स्की के साथ जो किया था वह हमारे साथ करने में उन्हें क्या लगेगा? इसलिए उस स्थिति से बचना भी होगा। स्वयं को बचा कर लड़ना होगा, जोश में और गुस्से में कुछ भी कर अपने आप को बार-बार निष्क्रिय और निष्फल होने से भी बचाना होगा। आज जब तक अवसर है कि वे स्पष्ट सत्ता में नहीं हैं और शासन का दमन-तंत्र उनके हाथ में नहीं है, हमें इसका फायदा उठाना होगा। वरना ग्राम्स्की की तरह जेल भी जाना हो सकता है।

और अगर हम अकर्मण्य निष्क्रिय बने रहे, एक दूसरे की चड्ढी उतारने के खेल में उलझे रहे तो हमारे बीच ही सनातन का नाम लेकर अनेक क्रिप्टो-वामपंथी बुद्धिजीवी भी फलते-फूलते दिखाई दे ही रहे हैं...तो संवाद और सम्प्रेषण की दुनिया पर उनका कब्जा बना ही रहेगा।

55 : रोगी बुरा या रोग?

एक मित्र ने कहा – वामपंथ बुरा नहीं है, वामपंथी बुरे हैं।

मित्र सामान्यत: राजनीतिक रूप से बहुत ही सजग और सचेत हैं। फिर भी यह कह गए। एक बात और है...उन्हें उर्दू अरबी आती है, कुरान को पीछे से आगे तक पढ़ रखा है...इस्लाम को भीतर से बाहर तक जितना अच्छा वे समझते हैं, उतनी स्पष्टता कम लोगों में दिखाई देती है। तो मैंने उनसे कहा –आपका व्यक्तव्य कुछ ऐसा है कि इस्लाम बुरा नहीं है, कुछ मुस्लिम बुरे हैं।

उन्होंने तुरत बात सँभाली – नहीं, यह तो मैं नहीं कहूँगा।

मैंने कहा – क्योंकि आप इस्लाम को ठीक से समझते हो। पर वामपंथ को उतनी अच्छी तरह नहीं समझते।

ज्यादातर लोगों के मन में कम्युनिज्म की जो तस्वीर है वह साफ नहीं है। लोगों को लगता है, कम्युनिज्म सिद्धांत तो अच्छा है...भारत की कम्युनिस्ट पार्टियों ने इसे खराब कर दिया है। बचपन से लेनिन की जो अच्छी अच्छी छवि बनी है, वह अभी भी जिंदा है। सो लोग इतनी घृणा नहीं जुटा पाते। कुछ उसकी मूर्ति का तोड़ा जाना गैरजरूरी बता रहे, कुछ लोग अच्छाइयाँ ढूँढ़ रहे हैं।

मुझे बस यह कहना है – जब किसी चीज को स्वीकार करें, तो उसमें से सिर्फ अच्छी चीजें स्वीकार करें, बुरी चीजें छाँट दें। पर जब किसी चीज को अस्वीकार करें तो पूरी तरह अस्वीकार करें। कुछ ऐसा है कि आपने फ्रिज खोली तो एक बासी, कई दिनों से पड़ा हुआ केक निकला। उसके एक किनारे में फफून्दी लगी है। आप क्या करते हैं? वह जरा-सी फफूँदी हटा कर बाकी केक खा लेते हैं? या पूरा केक बिन में फेंक देते हैं? कम्युनिज्म वही फफूँदी लगा केक है। इसे फफूँदी हटा कर खाने की जरूरत नहीं है।

वहीं अगर आप उसी फ्रिज से अंगूर का एक डब्बा निकालते हैं, और उस डब्बे में दो चार अंगूर खराब हैं। आप खराब अंगूर फेंक देते हैं, बाकी को खा लेते हैं।

यह स्वीकार करने की प्रक्रिया है। स्वीकृति सोच समझ कर दी जाती है... अस्वीकृति आंशिक नहीं होती...वह पूर्ण और निर्णायक होती है। अगर आप कम्युनिज्म को आंशिक रूप से भी स्वीकार करते हैं तो भी वह स्वीकृति ही है... इसे पूरी तरह से कूड़े में डालने की जरूरत है।

एक अन्यायी अत्याचारी तानाशाह को सिर्फ सिंहासन से उतारना काफी नहीं है... आपके मन में उस तानाशाह का जो सिंहासन बना हुआ है, पहले उसे तोड़िये...

56 : वामपंथ : म्यूटेट होता वायरस

सर्दियों में जुकाम तो होता ही रहता है। फ्लू तो सभी जानते हैं। इन्फ्लुएंजा भी कहते हैं इसे। हर साल होता है। नाम ही बस लंबा चौड़ा है। है यह बस सर्दी-जुकाम।

पर हर फ्लू सिर्फ सर्दी जुकाम नहीं होता। बीच-बीच में यह खतरनाक रूप ले लेता है। कभी आप सुनते हैं स्वाइन फ्लू, बर्ड फ्लू...ये सब भी फ्लू ही हैं। पर जब इनका एपिडेमिक फैलता है तो इससे बहुत लोग मरते हैं।

फ्लू का वायरस म्युटेशन से अपना रूप बदलता रहता है। इसे एन्टीजेनिक ड्रिफ्ट कहते हैं। इसलिए हर साल फ्लू के नए स्ट्रेन आ जाते हैं और आपकी इम्युनिटी उसके विरुद्ध काम नहीं करती। इसलिए फ्लू का वैक्सीन हर साल लेना पड़ता है। जब तक पापुलेशन में उसकी इम्युनिटी बढ़ती है, अगले सीजन में अगला स्ट्रेन आ जाता है।

लेकिन बीच-बीच में इस वायरस में बड़े परिवर्तन आते हैं, जिसे एन्टीजेनिक शिफ्ट कहा जाता है। तब यह फ्लू अपने खतरनाक रूप में पूरी दुनिया में फैलता है। इसे पैन्डेमिक कहते हैं। अभी तक दुनिया में कई इन्फ्लुएंजा पैन्डेमिक हो चुके हैं जिसमें करोड़ों लोग मरे हैं। सबसे खतरनाक पैंडेमिक 1918 में फैला था जिसमें पूरी दुनिया में पाँच से दस करोड़ लोगों के मरने का अनुमान है। वैसे भी हर वर्ष पूरी दुनिया में तीन से छः लाख वयस्क इन्फ्लूएंजा से मर जाते हैं। इसमें बच्चों के मरने का आँकड़ा शामिल नहीं है, क्योंकि वह मुझे आसानी से नहीं मिला। कमजोर इम्युनिटी के लोग, वृद्ध, फेफड़े की बीमारियों से ग्रस्त लोग इसके ज्यादा शिकार होते हैं।

फ्लू की बात क्यों कर रहा हूँ? यह साल 1918 के इन्फ्लुएंजा पैंडेमिक की 100वीं वर्षगाँठ है। यही वह काल था जब रूसी क्रांति भी पनप रही थी। तब दुनिया ने एक और पैंडेमिक देखा था जिसे कम्युनिज्म कहते थे।

फ्लू और वामपंथ में और भी बहुत-सी समानताएँ हैं। वामपंथ भी नित नए रूप बदलता रहता है। दुनिया को रूसी क्रांति और माओवाद जैसे बड़े पैंडेमिक याद हैं जिसमें करोड़ों लोग मारे गए थे...पर इसके छोटे छोटे एपिडेमिक पूरी दुनिया में फैलते रहते हैं और उसमें भी हर साल लाखों लोग मारे जाते हैं। पर उनकी गिनती नहीं होती, वामपंथ के खूनी इतिहास में वे सर्दी-जुकाम जैसे ही गिने जाते हैं।

वामपंथ वैचारिक फ्लू है। पर इसका सीजन सदाबहार होता है। यह नए रूप लेकर आता है और हमें धर दबोचता है। किसी को इसका आर्थिक पक्ष आकर्षित करता है, किसी को सामाजिक पक्ष, किसी को बौद्धिक पक्ष।

वामपंथी विचार हमारे आसपास बड़ी ही मासूम शक्लों में घूमता रहता है, और हम अनजाने ही उनसे संक्रमित होकर छींकने लगते हैं और हम इसे बीमारी भी नहीं गिनते। पिछले कुछ दशकों में इस फ्लू के कई नए स्ट्रेन हमारे बीच पनप रहे हैं। बौद्धिकवाद, उदारवाद, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे कुछ हल्के फुल्के स्ट्रेन निकलते हैं। फिर उन्हीं में मेजर एन्टीजेनिक शिफ्ट होता है और नए जहरीले स्ट्रेन निकल कर आते हैं और फैलने लगते हैं।

नारीवाद ऐसा ही एक खतरनाक स्ट्रेन है जो आता तो है स्त्री के अधिकारों की मासूम-सी शक्ल में, लेकिन लाखों परिवारों को तबाह करके चला जाता है और चूँकि इसकी शक्ल इतनी मासूम है कि हम इसे सर्दी-जुकाम से ज्यादा कुछ नहीं समझते। विदेशों में यह चाइल्ड-प्रोटेक्शन की शक्ल में आया है और परिवार में बच्चों पर माता-पिता और शिक्षकों की अथॉरिटी को नष्ट कर गया है। बच्चों और किशोरों में इसने यौन-शिक्षा के रूप में हमला किया है और समाज की नैतिकता और मर्यादा को बर्बाद कर दिया है।

सीजन आने से फ्लू हर किसी को पकड़ता ही है। ज्यादातर लोगों में दो-चार दिन रहकर चला जाता है। पर जिनकी बौद्धिक और सांस्कृतिक इम्युनिटी कम होती है उन्हें यह बहुत बुरी तरह प्रभावित करता है। उनके संस्कारों को, सभ्यता को, आत्म-सम्मान को नष्ट कर देता है। पर बहुत से मित्र हैं जो सामान्यतः वामपंथी

नहीं होते पर किसी एक विषय पर इस वायरस के प्रभाव में आ जाते हैं, और कहीं नास्तिकता, कहीं उदारवाद, कहीं नारीवाद छींकने लगते है।

सभ्यता तो कहती है, छींक आये तो नाक पर रुमाल रख कर छींकिये। यूँ ही नाक सुड़कते हुए इधर-उधर मत फैलाइये। पर सच्चाई यही है कि इतना हाइजीन हमारे समाज में है नहीं। वैचारिक हाइजीन भी नहीं है। तो लोग यूँ ही छींकते, खाँसते, नाक सुड़कते मिल जाते हैं। उन्हें पता भी नहीं होता कि उन्हें फ्लू हुआ है। कहते हैं, कल शादी में आइस क्रीम खाई थी, सर्दी लग गई है।

वामपंथ एक थॉट-वायरस है। बीमारी के संदर्भ में ही नहीं, कंप्यूटर के संदर्भ में भी सोचें तो यह एक वायरस है। लोगों के सोच की पूरी फॉर्मेटिंग बिगाड़ देता है। 16 साल की लड़की माँ-बाप को नकार के मोहल्ले के सलीम पंचर वाले के साथ भाग जाती है...दिन रात स्त्री-विमर्श पर बोलने वाली 20 साल की लड़की महारानी पद्मिनी के बलिदान का मजाक उड़ा रही है और एक हत्यारे बलात्कारी का महिमा-मंडन कर रही है...यह सब उसकी प्रोग्रामिंग के वायरस ही तो हैं... फॉर्मेटिंग बिगड़ गई है।

क्या करेंगे? कितनों को दूर भगाएँगे? जुकाम है, दो चार दिन में चला जायेगा। उन्हें धकिया के भगाने की आवश्यता शायद ना हो। धैर्य रखिये, उसमें से कई लौट आएँगे। अगर अच्छा, साफ-सुथरा एक रूमाल हो पास में तो पकड़ा दीजिये...भाई! ले, रूमाल में छींक। कोई अच्छे तर्क हों तो इज्जत से दे दीजिए। लेना होगा तो ले लेगा, नहीं तो दो चार दिन दूरी बना के रखिये। उसका पिछला रिकॉर्ड भी ध्यान में रखिये, कि उसकी सांस्कृतिक और बौद्धिक इम्युनिटी कितनी है। हाँ, अगर कोई बिल्कुल निरा वामिया ही हो, जिसकी आत्मा वेंटिलेटर पर टँगी हो तो अलग बात है। उसे जाने दीजिए...हर मरीज नहीं बचता, डॉक्टर भी जानते हैं।

विषैला वामपंथ

यह किताब किसी विद्वता के भ्रम में नहीं लिखी गयी है। ऐतिहासिक घटनाओं और तारीखों की एक्यूरेसी के लिए इसे एक रेफरेंस बुक भी नहीं होना है। इस किताब का स्तर चाय की दुकानों और चौक चौराहों पर होने वाली चर्चा से जरा भी ऊपर नहीं, ऐसा कोई प्रयास भी नहीं किया गया ना ही ऐसी कोई मंशा थी। यह किताब पढ़ने के लिए लिखी गयी है, ड्राइंग रूम में सजाने के लिए तो बिलकुल नहीं।

मैं चाहता हूँ कि यह उन सस्ती किताबों में गिनी जाये जिसे आप रेलवे स्टेशन पर खरीदें, ट्रेन की यात्रा में पढ़ें और खत्म करने के बाद अपने साथ ले जाने का कष्ट ना करें। इसे आप उसी सीट पर छोड़ जाएँ जिसे आपके बाद उस सीट पर बैठने वाला अगला यात्री पढ़े। ट्रेन में काम करने वाले वेंडर, मूंगफली बेचने वाले पढ़ें, कुली और झाड़ू देने वाले पढ़ें। पढ़ें और सोचें। यह उन किताबों में ना गिनी जाये जिसकी दस लाख प्रतियां बिकें और दस हजार लोग भी उसे खत्म ना कर पाएं। बल्कि इसकी पांच हजार प्रतियां बिके तो एक लाख लोग उसे पढ़ें। आप पढ़ें और इसे कलेक्ट करने लायक ना समझें, अगले को बढ़ा दें। दार्शनिक विद्वता, ऐतिहासिक एक्यूरेसी, साहित्यिक सौंदर्य से विहीन इस पुस्तक का एक दावा मैं फिर भी रखना चाहूँगा...वैचारिक प्रमाणिकता का। यह किताब अपनी सोच से लिखी गयी है। दुनिया जैसी दिखी, जैसी सोची समझी गयी वैसी लिख डाली गयी। इसमें भारी भरकम ज्ञान और राजनैतिक प्रतिबद्धता का मिर्च मसाला नहीं मिलाया गया है। यह विश्वविद्यालयों में रिसर्च कर रहे बौद्धिक जनों और मीडिया में ज्ञान बाँट रहे बुद्धिजीवियों के लिए नहीं है। यह हमारे आपके लिए है। इसमें अगली पीढ़ी के भविष्य की चिंता है, देश और समाज के कल का चिंतन है। जो है, सत्यनिष्ठा से और अपनी सरल बुद्धि से सोचा हुआ है और आपके सामने है...

\- डॉ. राजीव मिश्रा

शांति पब्लिशर्स इंडिया
E-mail : jiyajaunpuri@yahoo.in